विद्वत् लेख

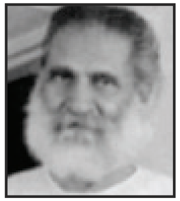

महाभारत : ग्रन्थ विषयक भ्रान्तियां और निराकरण

– पण्डित अनन्त शर्मा

इतिहास नाम से जितनी प्रसिद्धि संपूर्ण भारत में महाभारत की है वैसी रामायण की भी नहीं है। श्राद्ध में भगवान् स्वायम्भुव मनु की निर्दिष्ट विधि में इतिहास सुनाने का भी आदेश है। मनु के प्राचीन टीकाकार मेधातिथि, सर्वज्ञनारायण, कुल्लूक, राघवानन्द तथा नन्दन इतिहास के विषय की दृष्टि से महाभारत का ग्रहण करते हैं जबकि भगवान वाल्मीकि की कृति रामायण इससे पूर्व का ग्रन्थ है। इसी भाँति 'इतिहास पंचमवेदाः – इतिहास युक्त पाँच वेद जैसे कथन को 'महाभारत पन्चमाः वेदाः भारत पन्चमा वेदाः', रूप में भी प्रकट करते हैं, इससे स्पष्ट होता है कि महाभारत इतिहास पर्यायवाचक माना जाता है। इसके वैशिष्ट्य को इसी के एक वाक्य से भली भाँति प्रकट किया जा सकता है कि –

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्

जो कुछ इस (महाभारत) में है, वह अन्यत्र भी है किन्तु जो इसमें नहीं है वह अन्यत्र कहीं – किसी भी ग्रन्थ में नहीं है। यह स्वयम् वैशम्पायन ने जनमेजय को कहा है। (आदिपर्व 62.53)।

ऐसे इस ग्रन्थ रत्न के लिए लोगों में कैसी बुरी भ्रान्त धारणा है कि महाभारत ग्रन्थ घर में नहीं रखना चाहिए, इससे घर में अनिष्ट होता है। जबकि स्वयं महाभारत कहता है–

भारतं श्रृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत्।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः । (हरिवंश भविष्य पर्व)

नित्य भारत सुनना चाहिए, नित्य भारत का कीर्तन करना चाहिए, जिसके घर में भारतग्रन्थ है, जय उसके हाथ में है। (132–91)

यह निबन्ध आपको जिनकी प्रथम जन्मशती पर्व के समारोह निमित्त से पढ़ने का अवसर मिला है, उन महनीय कीर्ति राजगुरु कथाभट्ट श्री जगदीश चन्द्रजी शर्मा के वंश में सन् 1839 से सन् 1992 तक अनवरत 153 वर्षों तक चलती रही है। वंश की पाँचवी पीढ़ी में जन्म प्राप्त पण्डितजी श्री जगदीशजी के पूर्व तक महाभारत कथा मन्दिर में निरन्तर चलती रही, 15–16वें वर्ष की आयु में श्री शर्मा जी ने इस अनवरत क्रम का उत्तराधिकार लेकर 60 वर्ष तक इस असाधारण पुण्यकार्य का पूर्ण निष्ठा के साथ निर्वहन किया। इनका वंश फला–फूला, यश सुख से आदि से सदा सम्पन्न रहा, आज भी तीनों पुत्र सर्वश्री सुबोधचन्द्रजी, रविदत्तजी, गोविन्दचन्द्रजी देश–विदेश (अमरीका) में ख्याति प्राप्त हैं। क्या इससे बढ़कर अन्य साक्ष्य और अपेक्षित रह जाती है जो इस भ्रान्ति को पूर्ण मिथ्या प्रमाणित कर रही है। इसके साथ दूसरा प्रत्यक्ष साक्ष्य यह लेखक स्वयं है जिसके घर में महाभारत के लगभग 5–6 संस्करणों के ग्रन्थ हैं तथा जो 12वें वर्ष की आयु से, 74 वर्ष से महाभारत के स्वाध्याय में निरत है। वस्तुतः विद्वानों की उदासीनता के सातत्य से ही ऐसी भ्रान्ति पनपती है तथा दृढ़मूल होती जाती है। विद्वानों में व्याप्त ऐसी एक अतीव खेदजनक अन्य भ्रान्ति है महाभारत के ग्रन्थ रूप को लेकर।

ग्रन्थविषयक भ्रान्ति

इतिहास के मूर्धन्य विद्वानों की महाभारत के विषय में कैसी जानकारी है, इसका एक सामान्य रूप प्रस्तुत है–

"महाभारत का रचनाकाल भी बड़ा विवादग्रस्त है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि महाभारत का युद्ध 2000 ई.पू. और 1000 ई.पू. के बीच हुआ था। इस युद्ध के पश्चात् ही चारणों ने इसकी घटनाओं और पात्रों की वीरता के सम्बन्ध में गीतों का निर्माण किया होगा। इस प्रकार महाभारत के लेखबद्ध होने के सैंकड़ों वर्ष पूर्व महाभारत की मूल घटनाएँ अव्यवस्थित चारण गीतों के रूप में विद्यमान रही होंगी। कालान्तर में इन्हीं चारण गीतों पर महर्षि व्यास ने महाभारत को लेखबद्ध किया होगा।" (पृष्ठ 201, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, डॉ. विमलचन्द्र पाण्डेय, चतुर्थ संशोधित संस्करण 1996 ई.)

इस एक प्रघट्टक के पढ़ने मात्र से ज्ञात होता है कि महाभारत के स्वरूप के विषय में प्राचीनकाल से चली आ रही यथार्थ अवधारणा वस्तुतः मिथ्या है। इसका मिथ्यात्व पाश्चात्य लेखकों के आधार पर चलने वाले प्रायः सभी आधुनिक विचारकों ने दोहराया है। महाभारत के अनुसार हमें ज्ञात है कि भगवान कृष्ण द्वैपायन के पौत्रों, धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादि तथा पाण्डु पुत्र युधिष्ठिरादि के मध्य यह युद्ध हुआ था तथा अर्जुन के

प्रपौत्र (अभिमन्यु–परिक्षित–जनमेजय) जनमेजय को उसके सर्पसत्र में महाभारत सम्पूर्ण रूप में वैशम्पायन ने व्यास के आदेश से सुनाया था, जो एक लाख पद्यों का था।

महाभारत के इस विवरण पर इन वर्तमान काल के, संस्कृत के और इतिहास के विद्वानों को तनिक भी विश्वास नहीं है। चारणों के गीत अव्यवस्थित थे जो सैंकड़ों वर्षों से चले आ रहे थे, उनको आधार बनाकर महर्षि व्यास ने महाभारत को लेखबद्ध किया। ये महर्षि व्यास कौरव–पाण्डवों के पितामह (दादाजी) नहीं थे क्योंकि युद्ध के चिरकाल–सैंकड़ों वर्षों के पश्चात् ये हुए तथा चारणों के गीतों से इन्हें युद्ध का ज्ञान हुआ। इसका सीधा अर्थ है कि महाभारत की कथा विशुद्ध काल्पनिक है। इसी भाँति ग्रन्थ के कलेवर को भी वे एक व्यक्ति की कृति न मानकर तीन भिन्न–भिन्न व्यक्तियों की कृति मानते हैं जिनमें अनेक वर्षों का अन्तराल है। देखिये–

समय–समय पर महाभारत में अनेकानेक प्रक्षेप जुड़ते रहे और इस प्रकार इसका कलेवर बढ़ता रहा। आज इसमें एक लाख श्लोक हैं। (पृष्ठ 201)। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान रूप में सम्पूर्ण रामायण और महाभारत किसी एक व्यक्ति अथवाएक काल की रचनाएँ नहीं हैं। भिन्न–भिन्न व्यक्ति भिन्न–भिन्न कालों में इन महाकाव्यों के मूल का परिवर्तन करते हैं। (वही 202 पृ.)।
जब महाकाव्यों के मूल का ही परिवर्तन होता रहा है तो इनका लाभ ही क्या है, यह इनका सार है सम्पूर्ण विवेचन का। ऐसे श्रद्धाहीन लेख वस्तुतः इन महाग्रन्थों के स्वरूप के विघातक हैं।

इसी भाँति डा. राजबली पाण्डेय महाभारत के तीन स्तर बताते हैं– (1) जय (जिसमें कौरव–पाण्डव की मूल कथा थी) (2) भारत (जिसमें भारत की ऐतिहासिक परम्परा संगृहीत हुई) और (3) महाभारत (जिसमें वंश इतिहास और ऐतिहासिक परम्परा के साथ सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति – धर्म, दर्शन, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि – संगृहीत हो गयी)। (प्राचीन भारत 2006 ई. संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी पृ.81)।

यह सर्वथा निराधार है। आदिपर्व के प्रथम अध्याय के निम्न निर्दिष्ट 3 पद्यों की गलत व्याख्या से भ्रान्त लोगों ने ये मत खड़े किये हैंः–

अष्टौ श्लोकसहस्त्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा।। 81
इदं शतसहस्रं तु श्लोकानां पुण्यकर्मणाम्।
उपाख्यानैः सहज्ञेयमाद्यं भारतसंहिताम्।। 101–102

चतुर्विंशतिसाहस्त्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः। 102–103

प्रथम श्लोक भगवान् व्यास के विषय में उनके शिष्य वेदर्षि वैशम्पायन द्वारा कहा गया है। भगवान् व्यास अपनी कृति महाभारत के विषय में चिन्तित थे कि इसके लेखन की क्या व्यवस्था हो। उनके लिए मार्गदर्शन हेतु भगवान् बह्मा वहाँ आ गये तथा कहा कि तुम गणेश से लिखवा लो। व्यास के स्मरण से गणेश वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। 60,00,000 (साठ लाख श्लोकों के इस ग्रंथ का लेखन करने को भगवान् गणेश इस शर्त के साथ तैयार हो जाते हैं कि मध्य में मेरी लेखनी न रुके, मैं अविराम लिखता रहूँ। व्यास भी उन्हें चेतावनी देते हुए स्वीकार कर लेते हैं कि वे सोच–समझकर लिखें जिससे त्रुटि न रहे। व्यास पहिले ही ग्रथित श्लोकों को क्रम देते हुए बोलते जाते हैं किन्तु कुछ समय के पश्चात् वे कोई एक ऐसा जटिल श्लोक बोल जाते हैं जिसके अर्थ–चिन्तन में सर्वज्ञ गणेश को भी अपनी गति अतिमन्द करनी पड़ती है। इसी क्षण में व्यास आगे के पद्यों का क्रम ले लेते हैं। पूरे महाभारत लिखने में ऐसे क्लिष्ट पद्यों की संख्या 8800 हो जाती है। ऐसा पद्य लगभग 680 (छः सौ अस्सी) पद्यों के पश्चात् आता है। इन पद्यों के विषय में वैशम्पायन व्यास की घोषणा प्रकट करते हैं– 'आठ हजार आठ सौ श्लोकों को मैं समझता हूँ, शुक समझता है, संजय समझता है अथवा नहीं। 81।

महाभारत के प्रमुख वर्ण्य विषय की गणना करते हुए वैशम्पायन कहते हैं कि कुरुवंश के विस्तार, गान्धारी की धर्मशीलता, विदुर की प्रज्ञा (बुद्धि) कुन्ती की धृति (धर्म की पकड़) भगवान् वासुदेव कृष्ण की महिमा, पाण्डवों की सत्यनिष्ठा और धृतराष्ट्र पुत्रों का दुराचरण, यह सब कुछ ऋषि भगवान् द्वैपायन ने बहुत उत्तम प्रकार से बताया है। "पुण्यकर्माओं के इस सारे वृत्त के नाना उपाख्यानों के सहित वर्णन के इन एक लाख श्लोकों को 'आद्यभारत' समझना चाहिए" 101–102। उपाख्यानों के बिना शेष भारत संहिता के 24000 (चौबीस हजार) पद्य हैं। विद्वान् मात्र इस संहिता का प्रवचन (भी) करते हैं। (102–103) महाभारत के सम्पूर्ण विषयों को स्मृति में रखने के प्रथम अध्याय के 275 पद्य तथा द्वितीय अध्याय के 396 पद्य 'पर्व–संग्रह' के हैं। इनमें हरिवंश, विष्णु तथा भविष्य पर्वों में निबद्ध खिलभाग 'हरिवंश पुराण' सहित 18 पर्वों के उपपर्वों की श्लोक गणना करते हुए सम्पूर्ण महाभारत का पूरा कलेवर प्रस्तुत कर दिया गया है जो

महाभारत के कुल परिणाम का 150 वाँ भाग है। इस प्रकार एक लक्ष श्लोकों का पूरा विवरण दे दिया गया है। इतिहास लेखक इसको नहीं समझ पाये हैं, सम्भवतः समझने के लिए अपेक्षित श्रद्धा का अभाव भी कारण है जिससे वे तीन ग्रंथों की कल्पना जय, भारत और महाभारत रूप में कर रहे हैं।

यहाँ ध्यान से देखें तो उद्धृत पद्यों में दूसरे पद्य में एक लाख श्लोक के ग्रन्थ को भारत कहा है, साथ ही इसे 'आद्य' कहा है जिसे ये लोग तीसरा रूप कहते हैं नाम महाभारत देते हैं। इसका सीधा–सादा अर्थ है कि जो कुछ महाभारत कहता है वह तो बकवास है, इनका इतिहास लेखन 'वैज्ञानिक' है जिसमें न मूलग्रंथ को पढ़ने की आवश्यकता है और न अपने कथन की पुष्टि में हेतु और तर्क की ही आवश्यकता है। आज की आस्थामयी पीढ़ी का कर्तव्य है कि इस विकृति को दूर कर सत्य को समाज के समक्ष रखें।

तीसरी भ्रान्ति है महाभारत, रामायण को काव्य मात्र मानना अतः इनमें तथ्य का अभाव मानना। इसे समझें।

काव्यस्वरूप

भारत में कवि शब्द को बड़े व्यापक रूप में लिया गया हैं। ईश्वर का भी एक नाम कवि है। ईशावास्य उपनिषद् जो वस्तुतः यजुर्वेद की काण्व एवं माध्यन्दिनी शाखा का 40वाँ अध्याय है, कहता है–

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू

र्याथा तथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वती समभ्यः ।।8।।

उस कवि, मनीषी, परिभू तथा स्वयम्भू परमात्मा ने सभी अर्थों वस्तुओं को उनके अपने यथार्थ रूप में शाश्वत वर्षों के लिए बनाया है। विश्व के इन समस्त भावों को जिस तरह होना चाहिए ठीक वैसे ही बनाया है जहाँ यह कहने को अवसर ही नहीं है कि काश। यह होता तो अच्छा होता। यह भी केवल कुछ काल के लिए ही नहीं अपि सदा–सदा के लिए। यह सारी क्षमता जिस सूझबूझ से सम्पन्न दृष्टि को बताती है उस दृष्टि से सम्पन्न सत्ता का नाम कवि है।

कवि का कर्म और भाव काव्य है, यह काव्य न तो नष्ट होता है और न जीर्ण होता है, यह शाश्वती समा की स्पष्ट व्याख्या है। अथर्ववेद कहता है–

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।। 10.8.32

देव के इस प्रत्यक्ष विद्यमान काव्य विश्व को देखो तथा देखो इस विश्व का यथार्थ रूप प्रकट करने वाले काव्य वेद को भी जो कभी मरा नहीं और न जीर्ण हो रहा है। विष्णुसहस्रनाम में उसके इन नामों का साथ–साथ पढ़ना और भी स्पष्ट कर रहा है–

वेदः वेदवित् अव्यंगः वेदांगः वेदवित् कविः। 27

पाश्चात्य चकाचौंध से दृष्टि खो चुके भारतीयों ने भी काव्य तथा कवि का यह स्वरूप दृष्टि से ओझलकर काव्य को कल्पना भूमि पर खड़ा प्रासाद तथा कवि को कल्पना जीवी मान लिया, अतः रामायण, महाभारत को काव्य की पाश्चात्य कोटि में डालकर इनका अवमूल्यन कर दिया है। स्वयं व्यास द्वारा वर्णित रूप उनके काव्य का देखिये–

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम् ।। 6।

व्यास ब्रह्मा को कह रहे हैं, भगवन् मैंने यह परम श्रेष्ठ काव्य बनाया है। अब इस काव्य का विषयगत रूप प्रस्तुत कर रहे हैं–

ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यत्चान्यत् स्थापितं मया।

सांगोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया।। 1.1.62

इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्।

भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम् ।। 63

इन विषयों की गणना के उपसंहार का पद्य है–

यच्चापि सर्वगंवस्तु तच्चैव प्रतिपादितम्।

परं न लेखकः कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते।। 70

हे ब्रह्मन्। मैंने इस (काव्य) में वेदरहस्य तथा इससे सम्बन्धित जो कुछ भी है वह सब कुछ, वेदांगो, उपनिषदों तथा वेदों के विभिन्न विषयों को उभार कर इन्हें विस्तृत रूप में व्यक्त करने की क्रिया यहाँ दी है। 62। इतिहास तथा पुराणों का उन्मेष भी यहाँ ग्रथित है। भूत, वर्तमान तथा भविष्य रूप में आस्थित काल संज्ञा यहाँ है। 63। अन्त में वे कहते हैं कि जड़ और चेतन सम्बन्धित, देव–असुर–दानव मानव आदि से सम्बन्धित सब कुछ यहाँ बताया गया है पर मुझे इस भूमण्डल पर कोई इसका लेखक नहीं मिल रहा है। 70।

यहाँ वेद उपनिषत् इतिहास और पुराण सर्वप्रथम गिने गये हैं। यह है भगवान्

व्यास का काव्य। यही काव्य का आदर्शरूप उत्तरकालिक वाङ्मय में स्वीकृत है। इससे स्पष्ट है कि अभिव्यक्ति की शैली का प्रकार विशेष काव्य है। इसके प्रकाश में हमें काव्य को देखना है जो इतिहास, पुराण आदि के सहित ज्ञान–विज्ञान के सभी विषयों को प्रस्तुत करता है।

काव्य का असद् उपयोग

काव्य की रम्य लोकोपयोगी प्रियता को देखकर कुछ लोगों ने सोचा कि हम अपूर्व वस्तु दें जिस पर पूर्व विद्यमान की छाया भी न हो, और इस प्रकार अभिव्यक्ति की मौलिकता के नाम पर यथार्थता को नष्ट करने लगे। महाभारत भी इनसे नहीं बचा। रचना के समय से ही श्रेष्ठ कविजन इस आख्यान को अपना उपजीव्य मानने लगे (आदि पृ. 2138)। इस प्रकार महाभारत शनैः शनैः सभी का उपजीव्य हो गया। फलतः कई पुराण लेखकों ने नवीनतम विचार देने की दौड़ में महाभारत की मानकता को भूलकर इस पर भयंकर आघात किये। यह है काव्य का असल उपयोग।

महाभारत एवं पुराण

जैसा कि ऊपर बताया गया है इसमें इतिहास और पुराण का उन्मेष है। पुराण पाँचवाँ वेद है। अथर्ववेद के उच्छिष्ट सूक्त में इन पाँचों वेदों का उद्भव उच्छिष्ट से बताया गया है–

ऋचः सामानिच्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवा दिविश्रितः ।। 11.7.24

ऋचाएँ, साम, अथर्वछन्द, पुराण और यजुः ये पाँचों उच्छिष्ट से पैदा हुए। ये सभी देव हैं, द्युलोक के आश्रित हैं अतः द्युलोक में हैं।

वस्तुतः वेद एक है। यज्ञ में उपयोग के लिए चारों ऋत्विजों–होता अध्वर्यु, उद्गाता तथा बह्मा के लिए इसके चार विभाजन हुए जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका इस रूप में यज्ञों में उपयोग होता है। ये चारों विश्व के घटक के रूप में तत्व विशेष भी हैं। प्रथम तीन विश्व के अवयव रूप में तथा अन्तिम उनके आधार रूप में है। इनका ज्ञान भाषा के माध्यम से ही होता है अतः वाङमय रूप में तीन घटकों का उन्हीं नामों से ग्रहण है। चूँकि भाषा का रूप है अतः उसके तीन प्रकार ही सम्भव हैं। मोटे तौर पर छन्दोबद्ध रचना को ऋक् नाम, गीति अथवा गान को साम नाम दिया गया। इन दोनों से भिन्न तीसरे रूप को यजु नाम दिया गया। वाङमय में इन तीन प्रकारों से भिन्न चौथा कोई सम्भव नहीं है, इन तीन अवयवों – ऋक् साम यजुः– से रचित होने से वेद का नाम त्रयी भी है संहिता के कारण त्रय भी है वेद के कारण, त्रयम् है ब्रह्म के कारण।

वैदिक सृष्टि विद्या का नाम 'पुराण' है। यद्यपि 'पुराना' शब्द इसी का बिगड़ा रूप होने से पुराण का अर्थ पुराना भी है, किन्तु सृष्टि के सन्दर्भ में यह अर्थ उचित नहीं है। वहाँ अर्थ योजना के लिए इसे 'पुरा–अण' के रूप में देखना होगा। पुरम् नपुंसक तथा पुरा स्त्रीलिंग है, अण् धातु का अर्थ शब्द क्रिया। पुर व्यष्टि समष्टि शरीर का नाम है। इन पुरों के कारण से जो पुरों में बसता हुआ पुरुष कहलाता है। इस तथ्य को कहने वाला शास्त्र पुराण है। यह पुराण का वास्तविक अर्थ है।

'पुरा नवं भवति' द्वारा महर्षि यास्क भी यही कहते हैं कि पुराण वह है जो पुर के माध्यम से स्तुति प्राप्त करता है। इस विश्व के उद्भव स्थिति तथा लय की सनातन अडिग व्यवस्था के द्वारा जो स्तुति प्राप्त करता है वह ब्रह्म 'पुराण' है। विश्व सामने न हो तो परमात्मा की अचिन्त्य शक्ति का बोध कैसे सम्भव है। विष्णुसहस्त्रनाम स्तोत्र में इसी कारण से प्रथम नाम विश्व है। अतः महाभारत में सर्वत्र इतिहास के साथ उसके परोक्ष आधार को पुराण के रूप में लिया गया है। इस दर्शन के अभाव में आधुनिक लोगों ने पुराण को मिथ मिथक आदि मिथ्यामूलक नाम देकर अपने बौद्धिक दिवालेपन को जहाँ व्यक्त किया है वहीं इतिहास की हानि भी की है।

महाभारत और पुराण

आज पुराण उपपुराण रूप में जितने भी पुराण प्राप्त हैं कोई एक दो ही अपवाद हो सकते हैं जो व्यास की कृति के रूप में महाभारत का स्मरण न करते हों। इधर महाभारत में किसी भी पुराण का नाम नहीं मिलता है जबकि पुराणशास्त्र का सैंकडों बार उल्लेख है तथा उसके खिल भाग का नाम भी हरिवंश पुराण है। इससे निर्विवाद रूप में सिद्ध है कि महाभारत ही व्यास की कृति के रूप में सर्वसम्मत है। पुराण ऐसी कृति नहीं है यद्यपि ये सभी व्यास के उपदेश के फल अवश्य हैं जिनकी प्राप्ति का माध्यम व्यास के साक्षात शिष्य ऋषि लोमहर्षण सूत एवं इनके पुत्र इनके साक्षात् प्रतिरूप उग्रश्रवा हैं। इन सभी पुराणों में जहाँ भी वेदशाखा विभाजन का वर्णन है वहाँ एक स्वर से यह तथ्य व्यक्त हुआ है।

स्वायम्भुव मनु के अन्तर में ब्रह्मा तथा उनकी व्यवस्था से स्वयं मनु वेदाचार्य रूप में वेदों में से पुराण विद्या सम्बद्ध मन्त्र लेकर उस विद्या का प्रवचन करते हैं। यह देखकर भगवान् नारायण ब्रह्मा के कार्य में सहायता करते हुए एक विशेष अधिकारी आचार्य को सदा के लिए वेद विषय पुराण के प्रसार के लिए नियुक्त करते हैं। नारायण की इच्छा के साक्षात् रूप इस प्रथम व्यास का नाम अपान्तरतमा, सारस्वत प्राचीन गर्भ आदि है। (शांपर्व 349 38, 39, 66) वैवस्वत मन्वन्तर के पूर्व तक प्रत्येक मन्वन्तर में इन अपान्तरतमा का ही व्यासत्व है।

इस वैवस्वत मन्वन्तर में भगवान् ब्रह्मा से लेकर जातुकर्ण्य तक 27 व्यास हुए हैं। 28वें व्यास कृष्ण द्वैपायन पुनः अपान्तरतमा का अवतार ही है। (शां पर्व 349 43–46) महाभारत शांति पर्व में यह सब कुछ बताया गया है। 24वें व्यास भगवान् वाल्मीकि हैं जिनका नाम ऋक्ष है। 25वें शक्ति, 26वें शक्ति पुत्र पराशर, 27वें इनके भ्राता जातुकर्ण्य हैं। 28वें पराशर नन्दन कृष्णद्वैपायन हैं। अतः प्राचीनकाल से महाभारत काल तक पुराण का अध्ययन अध्यापन महर्षि पराशर द्वारा हुआ है। उन्हीं पुराण सूत्रों को कृष्ण द्वैपायन ने अपने वेद शिष्यों को दिया जिनमें लोमहर्षण ने इस परम्परा को आगे बढाया।

उग्रश्रवा के अनन्तर सम्भवतः यह विषय सम्प्रदायवादी विद्वानों के हाथों में चला गया। इन लोगों ने सृष्टि विद्या की प्रमुखता वाले सर्ग प्रतिसर्ग वंश तथा मन्वन्तर के साथ इतिहासात्मक वंशानुचरित को गौण कर पुराण को सर्वसंग्रह का रूप दे दिया। विष्णुपुराण तथा पद्मपुराण जैसे पुराणों में महाभारत का अत्युच्च रूप था वह इन सर्वसंग्रहात्मक पुराणों में नहीं मिलता है। शान्तिपर्व में वैशम्पायन अपने गुरु व्यास के विषय में जनमेजय को कहते हैं–

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धिनारायणं भुवि।

कोह्यन्यः पुरुषव्याघ्र महाभारतकृद्भवेत् ।। 346–12

पुरुष, श्रेष्ठ जनमेजय! कृष्णद्वैपायन व्यास को इस भूमण्डल पर तुम नारायण ही समझो। इनसे भिन्न कौन व्यक्ति महाभारत का रचयिता हो सकता है।

भगवान् पराशर महाभारत के इसी पद्य को अपने कथन के रूप में कह रहे हैं–

कृष्ण द्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।

कोह्यन्यो भुवि मैत्रेय महाभारत कृद्भवेत् ।। विष्णु पु. 3.4.5

इसी श्लोक के भाव को अत्यन्त आदर के साथ शैनक ऋषि के आश्रम में उग्रश्रवा कह रहे हैं पद्म पुराण के आरम्भ में सृष्टि खण्ड के प्रथम अध्याय में व्यास के नमन के रूप में –

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।

को ह्यन्य पुण्डरीकाक्षाद् महाभारत कृद्भवेत्।। 1–43

इसी को आगे बढाते हुए वे कहते हैं कि – लोकपूजित, दीप्त तेज वाले, ब्रह्मवादी उन्हीं सर्वज्ञ व्यास से मैंने पुराण का अध्ययन किया है। 1–44

इन्हीं व्यास के महाभारत के स्वरूप की विकृति कर रहे हैं भागवत् देवी भागवत् आदि पुराण। क्या पुराण का यह भव्य रूप महाभारत में दोष दिखाकर पुराणत्व की रक्षा कर रहा है अथवा सम्प्रदाय को भी बिगाड कर पुराण भक्तों को अन्ध मार्ग की दिशा दे रहा है।

अपनी वंश परम्परा के राजधर्म का पूर्ण पालन करते हुए सिद्धार्थ परीक्षित की थोडी सी अविनय का तत्काल मिला दण्ड, तक्षक दंश से मृत्यु। उसके अर्जित लोकों पर कोई प्रभाव नहीं डालता है यह प्रतिपादन है महाभारत का। मन्त्रिमण्डल की योजना के अनुसार वह रक्षा का प्रबन्ध कर लेता है किन्तु तक्षक उसे डस लेता है, वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार वह राज्य जनमेजय को देकर गंगातट पर चला जाता है। वहाँ भगवान् शुक अकस्मात् आ जाते हैं, श्रीमद्भागवत् की कथा कहते हैं, वह जीवनमुक्त हो जाता है। अब तक्षक दंश से विषाग्नि से वह भस्मसात् हो जाता है। उसे सद्गति मिल जाती है। (12.6.2, 13, 15)।

श्रीमद्देवीभागवत् में यह विवरण इस रूप में है– द्वितीय स्कन्ध के नवम् अध्याय में महाभारत का अनुसरण करते हुए इसकी मृत्यु बतायी गयी है जो इतिहास के अनुकूल है। आगे वर्णन है कि जनमेजय के सर्पसत्र में आये व्यास यज्ञान्त में कहते हैं कि तुमने महाभारत भी पूरा सुना, दान भी खूब दिया, ऋषिमुनियों की पूजा भी की तथापि तुम्हारे पिता को स्वर्ग प्राप्ति नहीं हुई। कुलयावन विधि तुमने नहीं की। मैं तुम्हें देवी भागवत् सुनाऊँगा, तुम देवीभख करो। यज्ञपूर्ति पर नारद आते हैं तथा जनमेजय का साधुवाद करते हैं कि तुम्हारे इस कार्य से तुम्हारे पिता दुर्गति से निकलकर मणिद्वीप चले गये। (12वें स्कन्ध के 13, 14वें अध्याय)।

जनमेजय का नागयज्ञ आस्तीक के कथन से रोका गया, महाभारतीय इतिहास है। भागवत पुराण कहता है कि अंगिरा के बृहस्पति ने इसे रुकवाया। (12–6,

23–28)। ऐसे महाभारत विरोधी सैंकड़ों प्रसंग इनमें हैं। क्या व्यास स्वयं ही ऐसे विरोधी वचन कहेंगे अथवा इन पुराणों के व्यासों को भगवान् कृष्ण द्वैपायन से भिन्न स्वीकार करेंगे। यह निर्णय हमें ही करना होगा और वह है एक स्वर में व्यास की आप्तता स्वीकार करना। व्यास की आप्तकृति महाभारत है, यही मानदण्ड है। जो पुराण अकारण ही रामायण अथवा महाभारत के ऐतिह्य पक्ष में तनिक भी फेरबदल करता है, वह पुराण–पुराण ही नहीं है। भगवान् वाल्मीकि स्वयं व्यास हैं तथा रामायण की रचना करते हैं। महाभारत में कृष्णद्वैपायन व्यास रामचरितोपाख्यान में वाल्मीकि आधार को लेकर दृढ़ता से चलते हैं, यही व्यासत्व है। उनके समक्ष अपने कल्प के राम तथा वाल्मीकि है। वे इन्हें छोड़कर कल्पान्तर के राम और वाल्मीकि की कल्पना क्यों करेंगे। ऐसी स्थिति में व्यास के महाभारत के प्रति पूर्ण श्रद्धा और निष्ठा वाले व्यासशिष्य, पैल, वैशम्पायन, जैमिनि, सुमन्तु, लोमहर्षण तथा उग्रश्रवा क्यों अपने गुरु के विरुद्ध जावेंगे। पुराणकार व्यासपीठ पर बैठकर कथा करने वाले व्यास हैं अतः उनके परिवर्तन सर्वथा अमान्य हैं। पुराणों के प्रति पूर्ण श्रद्धा रखते हुए हमें उनके ऐसे दोषों का पूर्णतया निवारण करना चाहिये। यह हमारा धर्म है।

महाभारत एवं भौमत्रिलोकी

भारतीय वाङ्मय में सर्वत्र तीन त्रिलोकियों की चर्चा है। नारायण जिसके दृष्टा हैं वह पुरुष देवतात्मक सूक्त, जो पुरुषसूक्त नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्यजुः तथा अथर्ववेद में प्रायः इनकी प्रत्येक शाखा में मिलता है, ऐसा सभी वेदों में मिलने वाला सूक्त कोई अन्य नहीं है। आत्मा, ब्रह्म और पुरुष एकार्थक है। ऋग्वेद में यह दसवें मण्डल का नब्बे क्रम (10–90) का सूक्त है। इसके 13–14वें मन्त्रों – चन्द्रमा मनसो. तथा नाभ्या आसीदन्तरिक्ष. – से पुरुष के अवयवों से चन्द्र आदि लोकों की सृष्टि बतायी गयी है। यहाँ नाभि से अन्तरिक्ष का शिर से द्यौ अथवा द्युलोक का तथा पैरों से पृथ्वी का उद्भव बताया गया है। ये तीनों आधिदैविक लोक कहलाते हैं। इनका पृथ्वीलोक भी इन्हीं नामों से पुकारे जाने वाले द्युलोक, अन्तरिक्षलोक तथा भूलोक से सम्पन्न एक त्रिलोकी है, भूमि अथवा पृथ्वी से सम्बद्ध होने से इसे भौम अथवा पार्थिव त्रिलोकी है। पुरुष आत्मा से सम्बद्ध त्रिलोकी आध्यात्मिक त्रिलोकी है। इस प्रकार हम प्राणी उस आध्यात्मिक त्रिलोकी के प्रतिरूप हैं। नवखण्डात्मक प्राचीनतम भारत भूलोक है। इससे लगा उत्तर का भाग जिसमें हिमालय की द्रोणियाँ (दूने) है अन्तरिक्ष है। इससे लगा हिमालय का मध्य तथा उत्तरी भाग जो उत्तरी ध्रुव तक चला जाता है, सम्पूर्ण प्रदेश द्युलोक अथवा द्यौ है, इन्हें व्याहृतियों के नाम से भूः, भुवः तथा स्वः भी कहा जाता है।

पुराण इस भौम त्रिलोकी का तथा आधिदैविक त्रिलोकी का विस्तार से वर्णन करते हैं। पुराणों के इस भाग की व्याख्या प्रायः महाभारत में है। महाभारत के कतिपय उद्धरणों से यह बताना उपयुक्त होगा कि महाभारत कितना उपयोगी है।

अपने 12 वर्ष के वनवास काल में पाण्डव महर्षिलोमश के साथ तथा अपने पुरोहित धौम्य के साथ दो बार तीर्थयात्रा करते हैं। इन यात्राओं से स्पष्ट होता है कि पृथ्वी पर जगह–जगह देवों द्वारा की गई तपस्या के स्थल थे। उत्तर में मेरुपर्वत के शिखर पर ब्रह्मा आदि देवताओं के स्थानों का परिचय देते हुए धौम्य कहते हैं।

उदीचीं दीपयन्नेष दिशं तिष्ठति वीर्यवान्।
महामेरु र्महाभाग! शिवोब्रह्मविदां गतिः।। वन पर्व 163–12
यस्मिन् ब्रह्मसदश्चैव भूतात्माचावतिष्ठते।
प्रजापतिः सृजन् सर्वं यत् किन्चिज्जंगमागमम्। 13

महाभाग युधिष्ठिर! इस उत्तर दिशा को प्रभामयी बनाता हुआ यह महामेरु पर्वत है जो सभी प्रकार के वीर्य से सम्पन्न मंगलमय तथा ब्रह्मवेत्ताओं की (एक मात्र) गति है। 13

इस पर ब्रह्म सदन है जहाँ अवस्थित भूतात्मा, प्रजापति ब्रह्मा सम्पूर्ण जंगम और स्थावर जगत, की सृष्टि करते हैं। 14

कैलास पर्वत पर अवस्थित महर्षि भृगु के पास जाकर महर्षि भरद्वाज पूछते हैं–

प्रजाविसर्गं विविधं कथं स सृजते प्रभुः।
मेरुमध्ये स्थितो ब्रह्मा तद्ब्रूहि द्विजसत्तम।

द्विजश्रेष्ठ! मुझे बताइये कि मेरुपर्वत के मध्य स्थित ब्रह्मा नाना प्रकार की प्रजा की सर्ग विसर्ग रूप सृष्टि कैसे करते हैं।

इनसे स्पष्ट है कि इस भूतल पर ही ब्रह्मा है तथा यहीं सृष्टि करते हैं। हम यह भी समझ लें कि आधिदैविक त्रिलोकी के सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु आदि देव भिन्न हैं

तथा भौम त्रिलोकी के सूर्य चन्द्र वायु आदि देव भिन्न है। ये आधिदैविक देव आदि के प्रतिरूप हैं। इन दोनों का स्पष्ट अन्तर इतिहास समझने तथा लिखने के भली भाँति जानना चाहिए। इसके अभाव में इतिहास में पद–पद पर भ्रान्ति है।

त्रिलोकी के लिये महाभारत

भगवान् व्यास ने त्रिलोकी में सुनने सुनाने के लिए साठ लाख श्लोकों की महाभारत का निर्माण किया था जिसका लेखन भगवान् गणेश ने किया है। शौनक आदि ऋषियों में महाभारत सुनाते समय उग्रश्रवा ग्रन्थ का परिचय देते हुए कहते हैं–

साठ लाख की इस संहिता के 4 (चार) विभाग बने हैं। 1. तीस लाख का, 2. 15 लाख का, 3. 14 लाख का तथा 4. एक लाख का। प्रथम विभाग देवों के लिए है तथा इसके सुनाने का दायित्व देवर्षि नारद का है। दूसरा विभाग पितृलोक के लिए है, इसे सुनाने वाले असितदेवल हैं। तीसरा विभाग पितृलोक के लिए है। यहाँ इधर–उधर फैली प्रजा गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों की है। इन्हें सुनाने का अधिकार शुक को दिया गया है। चौथे रूप के लिए श्लोक कह रहा है–

अस्मिँस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान्।। 1.1.108
शिष्योव्यासस्य धर्मात्मा सर्ववेदविदां वरः।
एकं शतसहस्त्रं तु मयोक्तं वै निबोधत।। 109

इस मनुष्य लोक में तो व्यास शिष्य, धर्मात्मा, सभी वेदों के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ, वैशम्पायन ने सुनाया है। वे एक लाख ये हैं, जिन्हें आप मेरे कहे रूप में जानिये। 108–109

व्यास शिष्यों – पैल, जैमिनि तथा सुमन्तु ने भी व्यास के उपदेश को अपनी–अपनी संहिताओं के रूप में भी निबद्ध किया है। इनमें से जैमिनि संहिता का केवल अश्वमेध पर्व भाग ही मिलता है जिसका हिन्दी अनुवाद के साथ गीताप्रेस गोरखपुर ने प्रकाशन किया है।

कौरव पाण्डवों के जीवन का एक–एक क्षण व्यास के समक्ष था। वे उनका घटित चरित अपने छहों शिष्यों को सुनाते थे। यह उपदेश कई वर्ष चला था। धृतराष्ट्र गान्धारी आदि को अपने पुत्रों का दुश्चरित सुनकर पीड़ा होगी इस दृष्टि से शिष्यों को निर्देश कर दिया था कि मेरा यह उपदेश इनके जीवनकाल तक कहीं किसी के आगे नहीं कहोगे। अतः धृतराष्ट्र आदि के जीवनकाल तक इसे लोकव्याप्ति नहीं मिली। इस प्रकार इसका प्रारम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण रूप विधिपूर्वक जनमेजय के नाग यज्ञ में वैशम्पायन द्वारा प्रथम वार सुनाया गया था। इसके बाद सूतनन्दन उग्रश्रवा के द्वारा नैमिषारण्य में शौनक–कुल में प्रवचन हुआ।

महाभारत युद्ध कलियुगारम्भ से पूरे 35 वर्ष पूर्व हुआ था, अपने जन्म से ही परिक्षित् युधिष्ठिर का उत्तराधिकारी था। इस प्रकार उसका शासन कुल 60 वर्ष का था जो 35 वर्ष द्वापर के तथा 25 वर्ष कलि के रूप में था। परिक्षित् के निधन के साथ ही सप्तर्षियों का मघाभोग भी पूरा हो गया था। जनमेजय का सर्पसत्र परिक्षित निधन के लगभग 30वें वर्ष में हुआ। यह कलि वर्ष 55वाँ था। यह महाभारत का प्रथम कथा श्रावण था जो युद्ध के 50 वर्ष पर हुआ। यह स्पष्ट बोध प्रत्येक का भारतीय को होना चाहिए कि भारत युद्ध कलि के पूर्व 36वें वर्ष में हुआ था। आज को दृष्टि में रखकर यह कहा जा सकता है कि ईसा पूर्व 3138 वर्ष पूर्व युद्ध हुआ था तथा महाभारत का विराट स्तर पर प्रथम प्रवचन ईसा पूर्व 3047 वर्ष पूर्व हुआ था। यह आज से 5063 वर्ष पूर्व की एक श्रेष्ठतम लोकोत्तर घटना थी। इस ग्रन्थ रत्न को घर–घर में पहुँचाना हमारा अनिवार्य कर्तव्य है। इतिशम्।

वन्दनीय व्यासम्

Sri Janakiramji Sastryji Vithala
Chief Priest, Bharatiya Temple,
Troy, Michigan, USA.
Email: saradalahari@gmail.com,
Phone: 001-248-770-9565

Srimat Jayapuri Jayati Raja Samsthana Rastram
Panditaha Tatra Medinyam. Sarva Sastra Visaradaha
Teshammadhye Bhasayantaha Maha Bharata Yajakaha
Maha Dadheechi Vamsabdhi Chandraha Jagadeeshchandra Kovidaha

श्रीमत् जयपुरे जयति राजसंस्थानराष्ट्रम
पंडिताः तत्र मेदिन्याम् सर्वशास्त्रविशारदाः।
तेषां मध्ये भाषयंताः महाभारत याजकाः
महादधीचि वंशाब्धिचन्द्रः जगदीश कोविदाः।।

Srimad Dadheechi. Subha Vamsa Pradeepta Chandram
Sri Rasa Ranipati Sevaka Bhaktachandram
Pouranikam Madhura Vagjhari Sadgurum tam
Vande Sada Jagadeeshachandra Gurum Namami

श्रीमद्दधीचिशुभवंशप्रदीप्त चक्रम्
श्री रासरानिपतिसेवक भक्तचन्द्रम्।
पौराणिकं मधुरवाग्झरी सद्गुरूं तम्
वन्दे सदा जगदीशचन्द्र गुरूं नमामि।।

It is with humble Pranam(s), salutations and respectful devotion and Sahasra Namaskaras to Rajaguru Sri Sri Sri Jagadeesh Chandra Sharma Ji Dadheech of Jaipur MaharajaSamsthan and a Resident Asthana MahaBharatapravachanaBhattaraka of SriChandraVihari RadhaKrishna mandir of Raja samsthan of Rajmata Champavatji.

We are celebrating the SATABDIMahotsava of Sri JagadeeshChandra Panditji, here in Jaipur and offering our prayers to a scholarly person of the century.

Lot of sacrifice devotion dedication and sanctity a person needs to have to the Lotusfeet of lord to deliver lectures on a great epic like Mahabharata.

यज्ञ दान तपः कर्म पावनानि मनीषिणः "Yajna. Dana. Tapaha. Karma. Pavanani. Maneeshinaha. " is Gitacharya's word. Sacrifice, selfless givingness, Meditation, and Tapascharya you need to purify the humanity in KaliYuga and uplift their Soul.

Sri Rajaguru Dadaji, one of a kind scholars in this century who performed selfless service to Lord Srikrishna all his life and gave pravachanas on Mahabharata more than 50 years and 6 times completely and enlightened the people of Jaipur.

He indeed comes under the Bhaktas like Vidura, Prahlada, Akrura, etc. Moksha Karana Samagryaha Bhakti Eva Gariyasi.

मोक्ष करण सामग्र्याः भक्तिरेव गरीयसी

Naradabhaktisutra says. Among so many paths to realize the supreme lord. Bhakti Yoga path only is on top of the list.So he comes under Ananya Bhaktas list. Learning about this type of people will benefit new generations and gives them knowledge. His auspicious children along with invited scholars are celebrating his centenary anniversary here very nicely recollecting Dadaji's life as MAHATMA.

"Jayanti" word and its affiliated discussions are Established by our great people to know the knowledge and glory of a great personality of our great Bharatamata in different wings and areas. There are scholars in all natural, spiritual, political, Rajaneeti, music, theatre sports, medicine, sciences, etc., subjects and different departments of India. In the category of Religion and Spirituality all of our Krishna Jayanti, Adi Shankracharya jayanti, Vivekananda jayanti comes.

Same way the children of our Dadaji from all over are celebrating this wonderful celebration of their Father. On that day, usually, we first

worship them with a Bhagvanjipuja and the scholarly persons Puja and offer our prayers and their compositions recitations and arrange the discourses related topics to present it to future generations to know about a great personality. Here Dadaji is in all in all well versed not only as a KathaBhattji but he did selfless service in the Maharaja Samsthan as a great friend of Maharaja Sawai Man Singh and in the Rani Champavatiji's temple and palace in the areas of social, political, public works, justice and helped so many needy people with Love and Affection.

So he certainly comes under the same Lineage of great Mahatmas, their family being blessed by. Sri Jagannadhaswamy of Puri the great Jagadguru of universe it is very appropriate to celebrate. Sri Rajaguru Jagadeesh Chandra Sharmaji's SATABDI mahotsavam here in Jayapuri.

In South India and all over India too, in all the temples There are so many rituals takes place in daily, weekly, monthly, yearly basis according to Vedic scriptures and rites to name some yajnas, yagas, Nitya Kalyana utsavas, and in the evening times Sangita, sahitya, Purana pravachanas, Nritya. Astavadhanaseva takes place in a grand way with devotion these sevas are performed for the sake of universal peace and Harmony on Mother Earth.

Lord Venkateswara temple in Andhra, Lord Krishna temple in Guruvayur Kerala, Lord Sri Ranganadha temple in Srirangam (Trichy) in Tamilnadu, Chamundeswari temple in Mysore. Karnataka, etc., temples are prominent temples where Suprabhata seva to-Sayana seva are being conducted very authentic way with 4 Vedas parayana.

It enlightens people and uplift their devotion and Sraddha towards Bhagavan कलौ संकीर्त्य केशवः "Kalou. Sankeertya. Kesavaha " is if we do Bhajan, dhun, sankeertan of lord it is enough to get Jeevanmukti. In another words in each temple of Indian origin all Navavidha Bhakti Margas are used in daily rituals. In the same way. Sri Rajaguru Dadaji offered his sevas to lord Krishna in Chandra vihari temple of Chmpavat Ji mandir.

Delivered pravachanas on MahaBharata more than 6 times in his life time more than 50 years is a great sadhana and people who attended are Dhanyas. For that, I salute to him 1008 times: Manasa. Vacha. Karmana.

MahaBharata is one of the very difficult Grandhi to know and comprehend and to deliver lectures. It is with 18 parvas and with 100000 slokas contains all the subjects of creation, preservation and destruction and Rajaneeti all sciences and Law and Justice of universe and it is very difficult to bring it to the level of people who are listening and present it to them.

Ramayana, MahaBharata, Bhagavatapuran kathas in south India.

A "Bhagavatar" means a devoted scholar in all 3 major Epics of sanatana dharma. And an upasaka of the supreme Lord a daily worshipper of Gayatri mantra and a person with purity of speech and power of speech combination. And he should be good at music and at basic dance steps to present nicely. Otherwise a Bhagavatar is a Sastryji or Sharmaji and can sit and narrate the Purana in a Temple like our Dadaji did.

But when it comes to the point of Harikatha kalakshepam the bhagavatar should be a good musician with nice tone. Harikatha is well known in costal Andhrapradesh in 19 th century in Vijayanagaram Maharaja court. There was a great Harikathakar SriSriSri Adibhatla Narayanadas, a great scholar in Sanskrit and Telugu and a well-versed pundit of all the Puranas who used to tell Harikatha, he composed so many Harikathas in Telugu and trained so many bhagavatars. He is known as a "Harikatha Pitamaha".

They usually take a part or parts of a purana and elaborate in a structural way and have a Violin and Mrudangam on both sides and sing and dance and tell the story for at least 5 to 6 hours in a night and finish one story or they take a complete Ramayana in Harikatha format and tell for 7 days as saptaha nights and conclude on 8 th day and conduct Sita-Rama kalyanam (marriage) and conclude. Some examples are Gajendramoksham, Prahladacharitam, Balicharitra, Dhruvacharitra, popularly Rukminikalyanam, Manucharitram. In

Bharatam (Mahabharat) they usually take: Droupadiswayamvaram, shantiparvam, karnaparvam, Bhishmaparvam, SrikrishnaRayabharam, like wise. And in other Puranas also like Markandeyapurana, Devibhagavatam etc.

There was one Tamilnadubhagavatar well known as a. "Muttayya Bhagavatar". A supreme scholar, he used to take not only kathas but also he used to take high philosophical subjects like Gopikageeta, Bhramaragita, Sukageeta, Hamsagita from bhagavatar and Bhavadgita (Bhagvadgita), Dharmavyadhagita, Vasistagita (Yogavasistam) like wise and he used to add small stories and tell the Harikatha.

And in Karnataka there was a Sri Krishnasastry bhagavatar, who used to take Rajasthani stories and Empires like Vijayanagara empire and explain to the people and encourage young generations to respect BharataMata and protect Bharata Mata and he used to sing Desa Bhakti Geetas and these became very popular in the 30's. In a village environment people used to learn all our religious stories from these Harikathas only.

Just to mention some very popular Harikathakars in south India:

- Srikrishna Bhagavatar
- Lakshmana Bhagavatar
- PanchapakesaBhagavatar
  (he also developed basic music notation guide to the students)
- Mangudi Chidambara Bhagavatar
- Muttayya Bhagavatar
- Tiruvalluvar
- Annaswamy Bhagavatar
- SriRangacharya Bhagavatar
- Sitaramasastry
- Sulamangalam vaidyanatha Bhagavatar
- Adibhatla Narayanadas Bhagavatar
- VijayaRaghavacharya Bhagavatar

There are also many ladies. Scholarly "Bhagavatarinis":

- Saraswatibai
- Padmasinidevi
- Lakshmi has (from Maharashtra)

Katha became very popular in Maharashtra also. Tulajamatabai is well known for Devibhagavatam Harikatha. Like that the Harikatha has been very important in the lives of people in the festival days for 10 days. Our very popular movie singer Sri S P Balasubrahmanyam's father was a very Harikatha Kar in Nellore city in A P. Harikatha Anand. HariKatha Anand is a popular Bhajan Singer.

Dadaji did more than 6 times means he is the Kaliyuga VedaVyasji you can call. He did it like Yajna and he merged with the supreme Lord.

"Great souls goes to the feet of Bhagavan and never come back
Yadgatva nanivartante, Taddhama paramam Mama"

Geetacharya said the abode of me is above Surya Chandra, Galaxys. Mokshadham - that's where Sri Dadaji is there to bless us. When God wants to expose and propagate his glory in the Kaliyuga he chooses and selects hand-picked rare people.

So Dadaji Sri Jagadeesh Chandra Sharmaji is chosen one by lord and came to earth and finished his yajna and reached Vaikuntha peacefully. And we are all blessed by his 100! Years celebrations participation.

VIDWAN. SARVATRA. PUJYATE
JAYATI JAYATI JAYAPURI. NAGARI
JAYATI JAYATI CHANDRAVIHARI HARI
JAYATI JAYATI RAJA SAMSTHANA RANI
JAYATI JAYATI DADHEECHI RAJGURUHU.
Om TAT SAT

विद्वान सर्वत्र पूज्यते
जयति जयति जयपुरी नगरी
जयति जयति चन्द्रविहारी हरी
जयति जयति राजसंस्थान रानी
जयति जयति दधीचि राजगुरूः
ओम तत् सत्

With Humble Pranams!!!
JanakiramasastryVithala

जयपुर में संस्कृत-वैदुष्य-परम्परा

– महामहोपाध्याय देवर्षि कलानाथ शास्त्री

जयपुर में इस नगर के स्थापना काल से ही संस्कृत, बृजभाषा आदि के साहित्य के अनुशीलन, लेखन और अध्ययन–अध्यापन की गौरवमयी परम्परा निरन्तर बनी हुई है। संस्कृत वैदुष्य के क्षेत्र में तो जयपुर भारत में काशी के बाद दूसरे स्थान पर आता था। इसलिए यह उक्ति प्रसिद्ध है – **"वाराणसी वा जयपत्तनं वा"**। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि न केवल इस नगर के निर्माता सवाई जयसिंह की यह विशेष रुचि थी कि भारतभर के अपने क्षेत्र के मूर्धन्य विद्वानों को यहाँ लाकर बसाया जाय बल्कि परवर्ती नरेशों ने भी यही परम्परा अपना ली थी। जयपुर नगर–निर्माण के साथ यहां जो घटनाएं हुई उनके कारण प्रारम्भ से ही देश के कोने–कोने से यहाँ मूर्धन्य संस्कृत विद्वानों का आगमन होने लगा। ये घटना थी अश्वमेध यज्ञ और जयपुर में यंत्रशाला की स्थापना। सवाई जयसिंह ने ज्योतिष, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि का स्वयं भी अध्ययन किया था और यंत्रशाला के संधारणार्थ जगन्नाथ सम्राट जैसे विख्यात ज्योतिषियों को भी बुलाया था। उन्होंने स्वयं संस्कृत में "यंत्रराज–रचना" ग्रंथ लिखा था और जगन्नाथ केवल राम आदि से प्रसिद्ध फ्रांसीसी, पुर्तगाली और अरबी ज्योतिष ग्रंथों का संस्कृत में अनुवाद भी करवाया था। नई "जयविनोदी" सारणी बनाई गई, पंचांग की परम्परा स्थापित हुई और इस प्रकार इस नगर में तब से ही ज्योतिष विद्या की परम्परा का श्रीगणेश हुआ। इसी प्रकार अश्वमेध यज्ञ के सम्पादनार्थ दक्षिण और काशी से अनेक संस्कृत विद्वान् यहाँ लाकर बसाये गए। इनमें वेद, धर्मशास्त्र, साहित्य आदि विषयों के उद्भट विद्वान् थे। ऐसे विद्वानों में रत्नाकर पौण्डरिक (जो राजगुरु बनाए गए), श्री कृष्ण भट्ट, हरिकृष्ण मिश्र, बृजनाथ भट्ट, गोकुल नाथ भट्ट आदि प्रमुख हैं। सवाई जयसिंह ने उस अवसर पर विद्वानों को बसाने के लिए ही ब्रह्मपुरी बसायी थी जहां अब तक संस्कृत विद्या की परम्परा रही है। इसके साथ ही इस राज्य में कुछ अन्य परम्पराएं ऐसी विकसित हुई जिनसे विद्या के प्रसार को बल मिला। इनमें से कुछ परम्पराओं का उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा।

स्वस्थ परम्पराएँ

एक परम्परा थी राजमहल में एक स्वतंत्र विभाग के रूप में पोथीखाना रखने की। यह परम्परा प्रायः सभी राजवंशों में पाई जाती है किन्तु जयपुर नरेशों ने इसमें विशेष रुचि ली। न केवल स्तरीय ग्रंथों की लिपियां करवाई गई वरन् सैंकड़ों ग्रंथ लिखवाए गये और उन्हें संग्रहित किया गया। यही कारण है कि आज के जयपुर के पोथीखाने में अनेक मौलिक अलभ्य संस्कृत ग्रंथ पाये जाते हैं। एक अन्य परम्परा थी संस्कृत और हिन्दी के कवियों को नियमित वृत्ति देकर राज्याश्रय में रखना। ऐसे कवियों को कवीश्वर कहा जाता था और इन्हें आजीविका के लिए जागीरें भी दी जाती थीं। इसी प्रकार राजा को मंत्र देने वाले या पढ़ाने वाले विद्वान् राजगुरु कहलाते थे और उन्हें भी जागीरें तथा विशेष सम्मान दिए जाते थे। ऐसे राजगुरु और कवीश्वर जीविका के प्रति आश्वस्त होकर अध्ययन–अध्यापन तथा ग्रंथ लेखन किया करते थे।

ग्रंथ लेखन

आमेर राज्य के समय से ही संस्कृत कवियों, नाटककारों और विद्वानों द्वारा ग्रंथ लेखन की परम्परा चली आ रही थी। ऐसे विद्वानों में पुण्डरीक विट्ठल (अकबरकालीन कवि), हरिजीवन मिश्र एवं विश्वनाथ रानाडे (सवाई रामसिंह द्वितीय कालीन नाटककार) आदि के उच्च–स्तरीय ग्रंथ आज भी पोथीखाने में हैं। जयपुर की स्थापना के बाद सवाई जयसिंह के समय के राजगुरु रत्नाकर पौण्डरिक ने जयसिंह कल्पद्रुम नामक विशाल धर्मग्रंथ संस्कृत में लिखा। कवि कलानिधि श्री कृष्ण भट्ट ने पुष्टिमार्ग के दर्शन ग्रंथ लिखे। ये सभी विद्वान् उस समय के भारत–ख्यात विद्वान् थे। इनके अतिरिक्त जनार्दन भट्ट ने श्रृंगार शतक और वैराग्य शतक लिखे जो काव्यमाला में प्रकाशित हो चुके हैं। उस समय के अन्य विद्वानों में नयनसुखोपाध्याय, केवलराम, गोकुलनाथ भट्ट आदि अनेक विद्वानों का नाम लिया जा सकता है। सवाई ईश्वरी सिंह स्वयं संस्कृत के विद्वान् थे और विद्वानों के संरक्षक भी। इनका किया हुआ भक्तमाल का संस्कृत अनुवाद उपलब्ध है। इनके आश्रय में दीनानाथ सम्राट, शिवराम पर्वणीकर, गंगाराम पौण्डरिक, रामचन्द्र पर्वणीकर, द्वारकानाथ भट्ट और अमर–राम मिश्र आदि विद्वान् निरन्तर साहित्य लेखन करते रहे थे। सवाई माधव सिंह प्रथम भी संस्कृत जानते थे। इनके समय में भी श्याम सुन्दर (लिट्टू पण्डित), सदाशिव दशपुत्र, सदाशिव भट्ट राजा आदि विद्वानों ने साहित्य रचना की। श्याम सुन्दर ने "माधव

विजय" काव्य लिखा। इसी समय द्वारकानाथ भट्ट ने भी "माधव विलास" काव्य लिखा। इन दोनों काव्यों में जयपुर का इतिहास वर्णित है।

संस्कृत काव्यों में इतिहास लेखन की यह परम्परा बाद तक चलती रही। सवाई जयसिंह तृतीय के समय सीताराम पर्वणीकर ने जयवंश महाकाव्य में तथा रामसिंह द्वितीय के समय कृष्णराम भट्ट ने कच्छ वंश महाकाव्य में भी जयपुर का इतिहास लिखा। यह भी उल्लेखनीय है कि न केवल जयपुर के इतिहास पर बल्कि जयपुर नगर के सौन्दर्य पर भी मुग्ध होकर अनेक कवियों ने काव्य लिखे। इनमें कृष्णराम भट्ट का जयपुर–विलास, हरिवल्लभ भट्ट का जयनगर पंचरंग और मथुरानाथ भट्ट का जयपुर वैभव, ऐसे संस्कृत काव्य हैं जो केवल जयपुर पर ही लिखे गए हैं। ऐसे बहुत कम नगर होंगे जिन पर इस प्रकार एकल काव्य लिखे गए हों।

धर्मगुरुओं की परम्परा और संस्कृत

यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि हमारे देश भारत की धार्मिक परम्पराएँ संस्कृत में लिखित ग्रन्थों, शास्त्रों आदि पर आधारित हैं। धर्माचरण, धर्मरक्षा, धार्मिक आधारों की अनुपालना सदा से राजा और प्रजा दोनों का प्रमुख कर्त्तव्य माना गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि देश के प्रत्येक अंचल में जहाँ धर्मस्थल हैं, मन्दिर हैं, यज्ञशालाएँ हैं अथवा पूजापाठ के किसी भी प्रकार के केन्द्र हैं, उनकी व्यवस्था करने वाले धर्माचार्य, पंडित, पुजारी, धर्मगुरु सदा उनके साथ रहे हैं। उनमें धर्मशिक्षा भी पनपती रही है और धर्मशिक्षा संस्कृत पर आधारित होती है अतः संस्कृत भी पनपती रही है। राजघरानों के इतिहास से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक राजकुल अपने धर्मगुरु, पुरोहित (राज पुरोहित), राजगरु, राज पंडित, देव पूजक, देव कुल व्यवस्थापक आदि पर श्रद्धा रखता आया है। सभी राजघरानों ने धर्माचरण की नियमित व्यवस्था के लिए या अपने परिसर में स्थापित देवगृहों, मन्दिरों आदि की व्यवस्था के लिए धर्मगुरुओं के पद बनाए थे, राजगुरु बनाए थे, उन्हें या तो जागीरें आदि दी थीं अथवा नियमित वेतन, भेंट पूजा आदि की व्यवस्था की थी। इस प्रणाली के कारण धर्म की ध्वजा के नीचे शताब्दियों से इस देश में जैसे धर्म की जड़ सदा हरी रही है वैसे संस्कृत की जड़ भी सदा हरी रही है, फलती–फूलती रही हैं।

जयपुर राजगृह में भी, जयपुर की स्थापना से पूर्व से लेकर धर्म के प्रति, मन्दिरों के प्रति, धर्माचरण की नियमित व्यवस्था के प्रति जो श्रद्धा रही है उसके कारण भारत के प्रत्येक अंचल से लाकर बनाए गए धर्मगुरुओं का, पूजकों का, राजगुरुओं का सुदीर्घ इतिहास रहा है। कुछ संकेत ही इस दिशा में प्रर्याप्त होंगे। यह तो सुविदित है कि जयपुर निर्माण से पूर्व आमेर राज्य में भी अम्बिकेश्वर आदि शिव मन्दिर थे। इनके पूजक राज्य सम्मानित थे जो शिव पूजा, शिव स्तुति आदि करते थे, संस्कृतज्ञ थे। महाराजा मानसिंह जब जेसोर (पूर्वी बंगाल) से शिलादेवी की मूर्ति लाए थे तो पूजा–अर्चना की व्यवस्था के लिए बंगाली विद्वान् परिवार भी आए। आमेर में मनसा माता आदि के मन्दिरों की पूजा भी बंगाली विद्वान् करते थे। बाद में अनेक तान्त्रिक विद्वान् जयपुर राज परिवार के राजगुरु होकर बिहार से यहाँ आए, राजसम्मानित रहे, जागीर और विपुल भूसंपत्ति के धनी रहे जिसमें मिथिला (दरभंगा) से आए पं. त्रिलोचन ओझाजी की परम्परा भी उल्लेखनीय है जो राजगुरु और बड़े ओझाजी कहे जाते थे (पं. विद्यानाथ जी ओझा तक की परम्परा)।

इसी प्रकार महाराष्ट्र से आए राजगुरु भट्टराजा वैष्णव परम्परा का प्रतिनिधित्व करते थे। गुजरात से आए भट्ट धर्मगुरुओं की परम्परा भी रही है जिनके वैष्णव मन्दिर आज भी चौड़ा रास्ता आदि में देखे जा सकते हैं। चैतन्य सम्प्रदाय के गोविन्द देव मन्दिर के गोस्वामियों का भी बड़ा सम्मान रहा जो आज भी देखा जा सकता है। इसी प्रकार सवाई जयसिंह के पुत्र सवाई माधव सिंह प्रथम के राज्यकाल में अनेक धर्मगुरु परिवार जयपुर में बुलाए गए, सम्मानित किए गए, राजगुरु के रूप में प्रतिष्ठित हुए जिनमे जौहरी बाजार स्थित चांपावत जी के मन्दिर (वैष्णव मन्दिर) के अधिष्ठाता कथाभट्ट राजगुरुओं की परम्परा उल्लेखनीय है जिन्हें पालकी का सम्मान प्राप्त था। गढ़ गणेश (ब्रह्मपुरी) के धर्मगुरु गुजराती (औदीच्य) विद्वान्, यज्ञशाला के पुरोहित तिवाड़ी (औदीच्य विद्वान्), मोती डूंगरी के गणेश जी के पूजक दाधीच विद्वान् आदि इसी प्रकार की धर्माचार्य परंपरा में जयपुर में सम्मानित रहे। इन सब ने धर्मरक्षा के साथ संस्कृत को भी जीवित रखा। चांपावत जी के मन्दिर के कथाभट्ट राजगुरुओं में अनेक मूर्धन्य विद्वान् हुए जिनमें पं. नन्दकिशोर शर्मा कथाभट्ट एवं नन्द कुमार शर्मा महाराजा संस्कृत कॉलेज में प्राध्यापक रहे, राजगुरु पं. जगदीश चन्द्र जी कथाभट्ट संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान्, वक्ता एवं लेखक रहे। इस प्रकार धर्मगुरुओं की परम्परा ने भी जयपुर में संस्कृत की बेल को हरीभरी रखने में अच्छी भूमिका निभाई।

संस्कृत की शिक्षा

संस्कृत के प्रचार और विकास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान जयपुर में स्थापित नियमित संस्कृत शिक्षा केन्द्रों का रहा है। यहाँ सन् 1844 में महाराजा कॉलेज की स्थापना हुई थी जिसमें उस समय संस्कृत शिक्षा की व्यवस्था भी थी, उर्दू का मकतब भी चलता था और अंग्रेजी आदि आधुनिक विषय भी पढ़ाये जाते थे। महाराजा रामसिंह की नाबालिगी में पोलिटिकल एजेंट कप्तान लाडलो की प्रेरणा से पं. शिवदीन जी की अध्यक्षता में यह कॉलेज बड़ी चौपड़ पर एक मन्दिर में (जहाँ आजकल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय है) शुरू हुआ था। सन् 1852 में उसी भवन में अंग्रेजी कॉलेज और संस्कृत कॉलेज अलग–अलग कर दिए गए– अर्थात्– संस्कृत के प्राध्यापक पृथक् होते थे जबकि अध्यक्ष एक ही होता था। सन् 1995 में यह अनुभव किए जाने पर कि एक ही भवन में अलग–अलग कॉलेजों का चलना सुविधाजनक नहीं है, संस्कृत कॉलेज सिरहड्योढ़ी बाजार में रामचन्द्र मन्दिर में लाया गया जहाँ वह अब तक है। उसके बाद भी विश्वविद्यालयीय शिक्षा पद्धति में एक विषय के रूप में संस्कृत की शिक्षा महाराजा कॉलेज में भी दी जाती रही और वहाँ भी अनेक मूर्धन्य विद्वान् संस्कृत प्राध्यापक रहे।

इस प्रकार जयपुर में संस्कृत कॉलेज भारत के नियमित संस्कृत कॉलेजों में प्राचीनतम कहा जा सकता है । सन् 1791 में बनारस संस्कृत कॉलेज, सन् 1821 में डेकन कॉलेज, पूना और 1824 में संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता स्थापित हुए थे। इस दृष्टि से जयपुर संस्कृत कॉलेज कालक्रम से चौथा है। इस कॉलेज ने संस्कृत विद्या के प्रमुख केन्द्र के रूप में बहुत अच्छी भूमिका निभाई। यहाँ भारत भर से चुनकर विद्वान् अध्यक्ष और प्राध्यापक के रूप में लाए जाते थे। यहाँ के अध्यक्ष निम्नलिखित रहे हैं:–

1. श्री एकनाथ चौधरी मैथिल (1865–1869) (व्याकरण, तन्त्र, धर्मशास्त्र के विद्वान्)
2. श्री रामभजन सारस्वत (1869–1893) (व्याकरण, तन्त्र, धर्मशास्त्र के विद्वान्)
3. श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री (1893–1907) (व्याकरण, तन्त्र, धर्मशास्त्र के विद्वान्)
4. महामहोपाध्याय दुर्गा प्रसाद द्विवेदी (1911–1926) (ज्योतिष के विद्वान्)
5. महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (1926–1944) (व्याकरण, वेदादि के विद्वान्)
6. श्री घूटर झा, साहित्यवेदान्ताचार्य (1944–1945)
7. श्री पट्टाभिराम शास्त्री, साहित्यन्यायमीमांसाचार्य (1945–1952)
8. श्री के. माधवकृष्ण शर्मा (1952–1955) (शोध विद्वान्)
9. श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी (1955–1964) (वर्तमान में पुरी शंकराचार्य)
10. श्री गोविन्द नारायण शर्मा (1964–1973) न्यायाचार्य
11. श्री खड्गनाथ मिश्र (1974–1976) न्यायाचार्य
12. श्री गंगाधर द्विवेदी (कुछ माह)
13. श्री रामनारायण चतुर्वेदी (1977–1980)
14. पं. चंडीप्रसाद (1980–1984)
15. श्री मोतीलाल जोशी (1984–1985)
16. डॉ. कैलाश चतुर्वेदी (1985)
17. श्री ईश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
18. पं. राधाकृष्ण शास्त्री
19. श्री सुरेन्द्र शर्मा
20. श्री आनन्द पुरोहित
21. श्री भास्कर शर्मा श्रोत्रिय

इस संस्कृत कॉलेज की विशेषता यह थी कि यहाँ संस्कृत की समस्त शाखाओं का अर्थात् चारों वेदों, छहों दर्शनों तथा आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण आदि वेदांगों का पठन–पाठन होता था। यह सुविधा संभवतः भारत में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं थी। सन् 1946 में आयुर्वेद कॉलेज पृथक स्थापित हुआ फिर राजस्थान विश्वविद्यालय में आयुर्वेद संकाय पृथक से कार्यरत हुआ जो अब पृथक से संस्थान स्थापित है। संस्कृत कॉलेज में उपर्युक्त अध्यक्षों के अलावा विभिन्न विषयों के मूर्धन्य विद्वान् प्राध्यापक के रूप में भी बराबर रहे। इन सबने विद्वान् शिष्य तो पैदा किये ही, ग्रन्थलेखन भी किया। इनमें व्याकरण के प्रोफेसर के रूप में एकनाथ मैथिल के परिवार ने निरन्तर सेवा की। उनके पुत्र नरहरि, उनके पुत्र हरिदत्त चौधरी और चन्द्रदत्त चौधरी तथा उनके पुत्र दुर्गादत्त, इस प्रकार चार पीढ़ियों में सभी व्याकरण के प्रोफेसर रहे। इनके अतिरिक्त महामहोपाध्याय शिवदत्त शर्मा, कुदाल दाधीच भी यहाँ व्याकरण के प्रोफेसर रहे जो बाद में लाहौर के आरिएन्टल कॉलेज के प्रोफेसर होकर चले गए। इन्होंने पच्चीस वर्षों तक निर्णय सागर प्रेस, बम्बई की काव्यमाला सिरीज का संपादन भी किया। अन्य

विद्वानों में काशीनाथ शास्त्री, चन्द्रशेखर प्रश्नवर और लक्ष्मीनाथ दाधीच तथा केदारनाथ ओझा उल्लेखनीय हैं। यहाँ वेदों का अध्ययन तथा उन पर विचार विमर्श दोनों प्रकार की विधाएँ पनपीं। वेदपाठियों में गोडसे गणेश शास्त्री शिवप्रताप शर्मा, चुन्नी लाल तथा सूर्य नारायण आदि विद्वान् उल्लेखनीय हैं। यहाँ के विद्वानों ने वेद की विज्ञानवादी व्याख्या करने की नई परम्परा भी चलाई जिसका आरम्भ समीक्षा चक्रवर्ती मधुसूदन ओझा ने किया जो स्वयं राजगुरु तथा संस्कृत कॉलेज और महाराजा कॉलेज में प्रोफेसर तो रहे ही, राजकीय पोथीखाने के अध्यक्ष तथा विद्वत्–सभा के संरक्षकों में भी थे। इन्होंने शतपथ ब्राह्मण की पद्धति से वेदों की मीमांसा की, उन पर वैज्ञानिक विमर्श किया तथा शोधपूर्ण सौ से भी अधिक ग्रंथ लिखे। इनमें वैदिक कोष, इन्द्र विजय, गीता का विज्ञान भाष्य, ब्रह्म विज्ञान आदि भारत–प्रसिद्ध हैं। इन्होंने सन् 1902 में महाराजा माधो सिंह के साथ लंदन की यात्रा भी की थी और वहाँ अपने संस्कृत व्याख्यान से सारे इंग्लिस्तान को प्रभावित किया था। यह व्याख्यान वेद–धर्म–व्याख्यान नाम से प्रकाशित भी हैं। इन्हीं के शिष्य गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी भारत प्रसिद्ध विद्वान् हुए। इनके अन्यतम शिष्य मोतीलाल जी शास्त्री ने वेदविद्या का मानवाश्रम विद्यापीठ स्थापित किया, शतपथ ब्राह्मण तथा गीता के हिन्दी में भाष्य लिखे तथा अनेक वेद–विद्या ग्रंथ प्रकाशित किए। इस पद्धति के विद्वानों में सुरजनदास स्वामी तथा नवलकिशोर कांकर उल्लेखनीय रहे। कांकर जी ने गद्य और पद्य में उत्कृष्ठ ग्रंथ लिखे तथा राष्ट्रपति सम्मान भी प्राप्त किया। संस्कृत कॉलेज के स्नातकों में बच्चूलाल चौबे, रामकृष्ण चौबे आदि वैदिक भी हुए। यहाँ के वैदिकों की अविच्छिन्न परंपरा अब तक चली आ रही है।

यहाँ के आयुर्वेद विद्वानों में जीवनराम भट्ट, गंगाधर भट्ट, कृष्ण राम भट्ट, लक्ष्मीराम स्वामी, नन्दकिशोर शर्मा, जयरामदास स्वामी आदि प्राध्यापक रहे। जयपुर के श्यामलाल वैद्य, गोपीनाथ शर्मा, नरहरि भट्ट, मुकुन्ददेव आदि आयुर्वेदज्ञ भी उद्भट विद्वान् थे। रामदयालु, स्वामी रामप्रकाश आदि उन्हीं के वारिस थे। दर्शन के विद्वानों में श्री शिवराम शर्मा उल्लेखनीय हैं जो चन्द्रधर गुलेरी के पिता थे। मधुसूदन झा, गिरिधर शर्मा, घूटर झा, पट्टाभिराम शास्त्री और गोविन्दनारायण शर्मा (जिनका उल्लेख अध्यक्षों में हो चुका है) भी दर्शन की मीमांसा, न्याय आदि शाखाओं के विद्वान् थे। इनके अतिरिक्त जीवनाथ झा, कन्हैयालाल शर्मा, नन्दकिशोर शर्मा और युगलकिशोर चतुर्वेदी उल्लेखनीय हैं जो दर्शन के विभागाध्यक्ष रहे। संस्कृत कॉलेज में ज्योतिष विषय तो था ही, इस विषय के प्रायोगिक शोध एवं वेद्य के लिए जयसिंह द्वारा स्थापित यंत्रशाला भी बहुत सहायक रही। अधिकांश समय तक इसके प्रभारी संस्कृत कॉलेज के विद्वान ही हुआ करते थे। यहाँ के ज्योतिष प्राध्यापकों में दुर्गा प्रसाद द्विवेदी, गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, केदारनाथ शर्मा, भवदत्त, विन्ध्याचल प्रसाद, बदरीनारायण आदि उल्लेखनीय हैं। जयपुर के गोकुल चन्द्र भावन तथा केदारनाथ शर्मा खगोल के और यंत्रशालाओं के विशेषज्ञ थे। दिल्ली, उज्जैन आदि की यंत्रशालाओं के पुनरूद्धार की जब–जब आवश्यकता होती थी इन्हें स–सम्मान बुलाया जाता था। ये दोनों यहाँ की यंत्रशाला के प्रथम प्रभारी तो थे ही, मूर्धन्य लेखक भी थे। श्रीभावन ने ग्रहलाघव, पंचांग, वलनी कल्प आदि खगोल पुस्तकें लिखीं तथा केदारनाथ ने काव्यमाला का संपादन किया। जयविनोदी सारणी की परम्परा का उल्लेख किया जा चुका है। उसी आधार पर यहाँ से निकलने वाला पंचांग भी बहुत प्रामाणिक माना जाता था। इसे निकालने वाले विद्वानों में मूल पुरूष केवलराम तथा उनके आधुनिक वंशज नारायण आदि ज्योतिषी प्रमुख थे। यहाँ के साहित्य शास्त्र के प्राध्यापकों में श्री कृष्ण शास्त्री द्राविड़, बिहारी लाल शर्मा, मथुरानाथ भट्ट, नन्द किशोर नामावल, हरि शास्त्री, जगदीश शर्मा, गंगाधर द्विवेदी, नन्द कुमार शास्त्री, रामचन्द्र शास्त्री आदि उल्लेखनीय हैं। सोमदेव गुलेरी, वृद्धिचंद शास्त्री आदि धर्मशास्त्र प्राध्यापक रहे।

संस्कृत कॉलेज ने सैकड़ों भारत– प्रसिद्ध विद्वान् पैदा किए जिनकी गिनती करना मुश्किल है। इनमें राजस्थान के सर्वप्रथम मुख्यमंत्री हीरालाल शास्त्री तथा भगवद्दत्त (कॉलेज में वेद विभागाध्यक्ष) आदि का नाम लिया जा सकता है। इस कॉलेज के हिन्दी प्राध्यापक प्रभुनारायण शर्मा नाट्याचार्य ने यहाँ नाट्य संघ की स्थापना की थी जिसने स्थानीय नाटकघर में 1994 से शुरू होने वाली दशाब्दी में उत्तर रामचरित और पाण्डव विजय आदि अनेक संस्कृत नाटकों का मंचन कर जनता में संस्कृत के प्रति रुचि जगाई थी।

महाराजा कॉलेज

महाराजा कॉलेज में एम.ए. तक शिक्षा दी जाती थी। सन् 1893 के कुछ समय बाद ही स्नातकोत्तर अध्यापन यहाँ शुरू हो गया था। इसमें भी संस्कृत के उद्भट विद्वान् प्राध्यापक रहे जिनमें कालीपद बनर्जी, हरिदास शास्त्री, मधुसूदन ओझा, लक्ष्मीनाथ शास्त्री, वीरेश्वर शास्त्री, बदरीनाथ शास्त्री, सूर्य नारायण शास्त्री, मथुरानाथ भट्ट,

माधव प्रश्नवर और रामकृष्ण शिलीमुख सुप्रसिद्ध हैं। हरिदास शास्त्री का नाम कुमारदास के महाकाव्य जानकीहरण की पाण्डुलिपि श्रीलंका से प्राप्त कर उसका सर्वप्रथम संपादन करने वाले विद्वान् के रूप में इतिहास में विख्यात हैं। यह गौरव की बात है कि महाराजा कॉलेज में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज जैसे विद्वानों ने (जो काशी संस्कृत कॉलेज के प्रिंसिपल बने)– शिक्षा प्राप्त की थी। चन्द्रधर गुलेरी (बी.ए. में सर्वप्रथम) और सर गोपीनाथ पुरोहित (सर्वप्रथम एम.ए.) भी यहाँ के स्नातक थे।

इस प्रकार लगभग 150 वर्षों से जयपुर में संस्कृत कॉलेज में प्राच्य पद्धति से और महाराजा कॉलेज में विश्वविद्यालयीय क्रम से संस्कृत शिक्षा बराबर दी जाती रही जिससे संस्कृत की अभूतपूर्व सेवा हुई। आज भी ये दोनों शिक्षा संस्थान चल रहे हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय में शोध स्तर तक (एम.ए., एम.फिल. और पी.एच.डी. तक) संस्कृत शिक्षा है। संस्कृत की प्रवेशिका और उपाध्याय परीक्षाएं माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने 1962 में ले ली थीं। उपाधि परीक्षाओं के लिए 5–6 वर्ष पूर्व तक राजस्थान विश्वविद्यालय में ही प्राच्य विद्या संकाय अलग से बन गया था जो शास्त्री और आचार्य से लेकर शोध परीक्षाओं तक (विद्यावारिधि, विद्यावाचस्पति) का संचालन करता था। संस्कृत शिक्षकों के प्रशिक्षण के अनेक पाठ्यक्रम चल रहे हैं। दिल्ली के केन्द्रीय संस्थान तथा राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, दोनों के अधीन शिक्षा शास्त्री आदि उपाधियों के पाठ्यक्रम आज इस नगर में शिक्षा–कन्द्रों द्वारा चलाए जा रहे हैं। केन्द्र सरकार ने यहाँ केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ भी स्थापित किया है। भारत में ऐसे केवल 10 विद्यापीठ हैं।

अन्य शिक्षा केन्द्र

जयपुर में ऊपर उल्लिखित प्रमुख शिक्षा केन्द्रों के अतिरिक्त अनेक अन्य शिक्षा केन्द्र भी वर्षों से चल रहे हैं दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज जो सन् 1885 में स्थापित हुआ था, संस्कृत और जैन दर्शन का प्रमुख शिक्षण केन्द्र है। इसके अध्यक्षों में पं. चैनसुख दास न्यायतीर्थ जैसे विद्वान् हुए हैं जिन्होंने संस्कृत और जैन दर्शन के प्रसार में बहुत योगदान दिया है। इसी प्रकार सन् 1920 में स्वामी लक्ष्मीराम जी द्वारा संत दादू की स्मृति में दादू महाविद्यालय की स्थापना की गई जो दादू पंथियों की संस्कृत के प्रति अमूल्य सेवा कही जा सकती है। इसमें छात्रावास तथा क्रीड़ा–सुविधाओं सहित संस्कृत के स्नातकोत्तर स्तर तक अध्यापन की सुविधा है। आज जयपुर में सरकारी संस्कृत कॉलेज के अलावा 22 सहायता प्राप्त संस्कृत शिक्षणालय व 40 मान्यता प्राप्त शिक्षणालय चल रहे हैं।

संस्कृत विश्वविद्यालय

सन् 2001 से संस्कृत की प्राच्य परीक्षाओं के संचालन, संस्कृत महाविद्यालयों के संवर्धन तथा अपने परिसर में शास्त्री आचार्य आदि की प्राच्य शिक्षा प्रदान करने का कार्य कर रहा जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय भी जयपुर में है तथा 1958 ई. से संस्कृत शिक्षा का पृथक स्थापित निदेशालय भी जयपुर में है यह इस नगर का वर्तमान गौरव सुविदित ही है।

साहित्य सेवा

संस्कृत शिक्षा के प्रसार के साथ–साथ जयपुर ने संस्कृत साहित्य के इतिहास में भी कीर्तिमान बनाया है। 19वीं शताब्दी के अन्त और 20वीं शती के प्रारम्भ में संस्कृत विद्या की पुनर्जागृति में कुछ मुद्रणालयों ने बहुत बड़ा योगदान किया जिनमें निर्णय सागर प्रेस प्रमुख है। इस प्रेस ने प्राचीन स्तरीय संस्कृत ग्रंथों की सिरीज काव्यमाला नाम से प्रकाशित की जिसमें लगभग 100 मूर्धन्य ग्रंथ और गुच्छकों में लगभग 150 काव्य ग्रंथ निकले। इस काव्यमाला के संपादक के रूप में जयपुर के महामहोपाध्याय दुर्गाप्रसाद शर्मा, महामहोपाध्याय शिवदत्त दाधीच और केदारनाथ शर्मा ने वर्षों तक काम किया। इसके अतिरिक्त श्री कुष्ण, कृष्ण राम, सीताराम, मथुरानाथ भट्ट, हरि शास्त्री आदि कवियों और विद्वानों ने जो विभिन्न काव्य और ग्रंथ लिखे उन्होंने जयपुर का नाम संस्कृत के इतिहास में उजागर किया ही है। जयपुर में भी ऐसे संस्कृत प्रेस स्थापित हुए थे जिनमें सन् 1903 में बालचन्द्र शास्त्री द्वारा स्थापित बालचन्द्र प्रेस और पण्डित प्रेस उल्लेखनीय हैं। एक अन्य कीर्तिमान इस नगर ने संस्कृत पत्रकारिता में भी बनाया है। संभवतः सर्वाधिक समय तक जीवित रहने वाला स्तरीय संस्कृत पत्र संस्कृत रत्नाकर यहाँ के विद्वानों ने मिलकर सन् 1904 में प्रारम्भ किया था जो लगभग आधी शती तक (सन् 1949 तक) जयपुर से ही निकला। इसे भारत की मूर्धन्य संस्कृत संस्था अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन ने बाद में अपना मुख–पत्र ही बना लिया। यहाँ के विद्वानों को जिनमें गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी प्रमुख हैं, इस सम्मेलन की स्थापना में भी प्रमुख भूमिका रही। सन् 1945 में (28, 29, 30 दिसम्बर को) इस सम्मेलन का 18वां अधिवेशन भी जयपुर में ही हुआ जिसकी अध्यक्षता काशी के महामहोपाध्याय चिन्न स्वामी शास्त्री ने की। जयपुर

से संस्कृत रत्नाकर 1949 में बनारस स्थानान्तरित हो गया किन्तु भारती मासिक पत्रिका जो 1950 में यहाँ से शुरू हुई आज भी नियमित रूप से निकलती है। "स्वर मंगला" त्रैमासिक भी यहीं से निकल रही है। संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद में भी जयपुर की भूमिका उल्लेखनीय है। महाराजा जयसिंह, प्रताप सिंह एवं जगत सिंह आदि ने उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि महान ग्रंथों के ब्रजभाषा में कविता व गद्य में अनुवादों की परम्परा चलाई थी जो यहाँ के कविश्वरों ने किए थे। इनकी पाण्डुलिपियाँ आज भी पोथीखाने में सुरक्षित हैं।

पुस्तकालय एवं शोध संस्थान

उक्त पोथीखाने के अतिरिक्त जयपुर में संस्कृत ग्रंथों के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथागार हैं जिनमें लाल भवन का जैन पुस्तकालय, गणगौरी बाजार का वीरेश्वर पुस्तकालय आदि उल्लेखनीय हैं। आज भी इस नगर में अनेक शोध संस्थान कार्यरत हैं। विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग और पुस्तकालय के अतिरिक्त यहाँ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की शाखा है तथा ब्रह्मपुरी में सरस्वती, बापू नगर में उच्च स्तरीय अध्ययन संस्थान, गंगवाल पार्क में रामचरण प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ठठेरों के रास्ते में संजय संग्रहालय एवं ग्रन्थागार आदि ऐसे ही विद्यालय हैं। दुर्गापुरा स्थित "मानवाश्रम वेद–विद्या का प्रमुख शोध–केन्द्र रहा है।

संस्कृत अकादमी

सन् 1980 में राजस्थान संस्कृत अकादमी की स्थापना भी जयपुर में ही हुई। इसके अध्यक्ष के रूप में डॉ. मण्डन मिश्र, राधाकृष्ण दीक्षित, कलानाथ शास्त्री, गंगाधर भट्ट, डॉ. हरिराम आचार्य आदि कार्यरत रहे। अकादमी ने अनेक ग्रंथ प्रकाशित किए हैं। स्वरमंगला नामक संस्कृत त्रैमासिक भी प्रकाशित होता है। माघ पुरस्कार अखिल भारतीय पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कारों से यह सर्जनरत विद्वानों को पुरस्कृत कर वेद, कर्मकांड और ज्यौतिष के विद्वानों का सम्मान करती है। जयपुर में ही 1985 में राज्य संस्कृत शिक्षा निदेशालय पृथक् से स्थापित हुआ जो एक कीर्तिमान है। राजस्थान की राजधानी होने के नाते जयपुर ऐसे अनेक कीर्तिमानों का धनी हो, यह स्वाभाविक ही है।

आकाशवाणी और दूरदर्शन

जयपुर में 1955 में आकाशवाणी केन्द्र स्थापित हुआ। इस केन्द्र ने प्रारम्भ से ही संस्कृत के जो कार्यक्रम किए वे भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। 1956 से 1963 तक यहाँ से प्राचीन संस्कृत नाटकों के समान्तरण तो प्रसारित हुए ही, दस–पन्द्रह मौलिक संस्कृत नाटक भी प्रसारित हुए। संस्कृत संबंधी वार्ताएं प्रारम्भ से अब तक नियमित रूप से प्रसारित होती रही हैं। आज भी जयपुर केन्द्र से प्रातः–सायं दो बार संस्कृत में समाचार बुलेटिन प्रसारित किए जाते हैं (दिल्ली से रिले)।

जयपुर नगर की स्थापना से लेकर अब तक यहाँ हुए संस्कृत विकास का एक अति–संक्षिप्त शब्दचित्र है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अकेले इस नगर द्वारा संस्कृत भाषा और इसके वाङ्मय के संरक्षण प्रसार और सेवा के लिए जो कार्य किया गया है उसका संस्कृत के इतिहास में क्या स्थान हो सकता है।

महाभारत की महाकथा

–आचार्य दयानन्द भार्गव

कथाभट्टैर्व्यासपीठान्महाभारतभारतं
कृतं जयपुरं यैस्तान्नत्वा किञ्चिद् ब्रवीम्यहम्

जिन राजगुरु कथाभट्टों ने व्यासपीठ से जयपुर को महाभारत के प्रकाश में सराबोर कर दिया उन्हें प्रणाम करके मैं कुछ निवेदन कर रहा हूँ–

महाभारत की कथा की जोड़ की दूसरी कथा भारत में ही नहीं विश्व भर में कहीं नहीं है जिस कथा के सम्बन्ध में यह कहा गया हो कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चारों पुरुषार्थों के सम्बन्ध में जो इस कथा में है वही कहीं अन्यत्र भी है और जो इस कथा में नहीं है वह फिर कहीं भी नहीं है–

धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभः।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।

पुरुषार्थ का विश्वकोश

यानी महाभारत पुरुषार्थ का विश्वकोश है। मानव जो कुछ चाहता है वह पुरुषार्थ कहलाता है। वह पुरुषार्थ चार प्रकार का है–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। शरीर को अर्थ चाहिये, मन को काम, बुद्धि को धर्म और आत्मा को मोक्ष। जब चारों पुरुषार्थों का विश्लेषण महाभारत की कथा में हो गया तो फिर और जानने को शेष ही क्या रहा?

पर क्या महाभारत में सचमुच चारों पुरुषार्थों का वर्णन हो गया है? और केवल वर्णन से क्या होगा?क्या इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि का उपाय भी बता दिया गया है?यदि ऐसा है तब तो महाभारत की कथा सचमुच अद्वितीय है। और सचमुच ऐसा ही है। इस पर थोड़ा विचार किया जाये।

एकै साधे सब सधे

यदि समग्र ज्ञान प्राप्त करना हो तो क्या उपाय है–**कस्मिन्नु खलु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति?**

मनुष्य की सारी गतिविधियों का केन्द्र मन है– **मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।**

बन्ध अर्थात् दुःखद और मोक्ष अर्थात् सुखद – दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियों का उद्गम मन से होता है। यदि हम मन को समझ लें तो फिर अच्छी बुरी सभी प्रवृत्तियों को जान लेंगे। फिर कुछ भी जानने को शेष नहीं रहेगा।

मन का विज्ञान – मनोविज्ञान

अब मन को जानने के दो उपाय हैं। एक तो उपाय मनोविज्ञान का है। अचेतन, अवचेतन तथा चेतन के तीन विभागों में मन को बाँट कर उसका फ्रायड, युंग आदि मनोवैज्ञानिकों की पद्धति से विश्लेषण करें, जैसा विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान–विभाग किया करते हैं। यह उपाय वैज्ञानिक तो है किन्तु सभी विज्ञानों के समान नीरस तथा उबाऊ है। इस उपाय से हम बौद्धिक स्तर पर तो कुछ समझ लेते हैं, किन्तु वह समझ हृदय तक जाकर मनुष्य का रूपान्तरण नहीं करती। इसलिये फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिक भी महर्षि वेदव्यास नहीं बन सके और न उनकी उपलब्धियाँ पंडाल लगाकर उस तरह संसार भर में कहीं बखानी जाती है जिस प्रकार वेदव्यास की भागवत, पुराण या महाभारत की कथा हजारों हजारों लोगों के बीच सदैव कहीं न कहीं होती रहती हैं।

मन की बातः कथा

निवेदन यह है कि मन को जानने का एक दूसरा उपाय कथावाचन है। कथा का अर्थ है किसी घटना का वर्णन। कोई घटना होगी तो उसमें मनुष्य तो आयेगा ही। मनुष्य से जुड़ी वह घटना मनुष्य के किसी न किसी पक्ष को उजागर करेगी अर्थात् मनुष्य के मन के किसी न किसी पक्ष की समझ हममें पैदा हो जायेगी। कथा के आकर्षण का यही रहस्य है। जब हम किसी कथा को सुनते हैं तो उसमें वर्णित घटना को अपने से जोड़कर देखते हैं। इसे काव्यशास्त्री साधारणीकरण कहते हैं। इस साधारणीकरण के कारण कथा की वह घटना किसी और की घटना न होकर हमारी अपनी घटना हो जाती है और उस घटना से मिलने वाला ज्ञान बुद्धि से परे जाकर हृदयस्थ हो जाता है। यही विज्ञान और कला का भेद है। विज्ञान की गरिमा यह है कि उसका ज्ञान तटस्थ या वस्तुनिष्ठ होता है, साहित्य की खूबी यह है कि वह व्यक्तिनिष्ठ होकर हृदय में बैठ जाता है। विज्ञान वातानुकूलित कमरों में होने वाली सेमिनारों तक सिमट जाता है पर कथा–साहित्य शहरों में पंडालों में सैकड़ों लोगों के बीच ही नहीं बँचता, अपितु

गाँव और ढाणियों में ढपली की थाप पर बिना किसी लिखी पुस्तक की सहायता के मौखिक रूप से भी गाया जाता है। आल्हाऊदल टीवी के युग में भी ठेठ देसी तर्ज पर अभी भी गाँव में जिन्दा है। यह कथा शैली की अमरता का स्वरूप है।

पुराणी युवति महाकथा

सामान्य कथा मानव की किसी एक या दो प्रवृत्तियों पर आधारित रहती है। युद्ध की कथा हो सकती है, प्रेम की कथा हो सकती है, हास्य कथा हो सकती है, करुणा का प्रसङ्ग हो सकता है, क्रोध, भय, रौद्र, घृणा, विस्मय, शान्ति, वात्सल्य का कोई प्रसङ्ग हो सकता है या इनमें से ही कोई एक या दो प्रसङ्ग हो तो वह कथा होती है किन्तु यदि ये सभी प्रसङ्ग किसी एक कथा में हो तो वह महाकथा हो जाती है। महाभारत ऐसी ही महाकथा है। इसी महत्त्व को बताने के लिये महाभारत के पहले 'महा' शब्द लगाया गया है।

स्पष्ट है कि महाभारत के इस महाकथा होने के कारण उसमें मानव–मन के सभी पक्ष आ गये इसलिये यह मानवीय–अध्ययन का विश्वकोश बन गया। परिस्थितियाँ देश–काल के साथ बदलती हैं, वैज्ञानिक प्रगति के साथ साधन बदलते हैं। अतः तकनीक पुरानी होकर अप्रासङ्गिक हो जाती है किन्तु मानव मन नहीं बदलता। इसलिये जिस रथ पर गीता सुनायी गयी थी वह रथ आज युद्ध में काम नहीं देगा, टैंक चाहिये, किन्तु उस रथ पर बैठे कृष्ण और अर्जुन का जो सम्वाद हुआ वह आज भी काम का है क्योंकि अर्जुन के प्रश्न उठाने वाला मन और कृष्ण के जवाब देने वाली प्रज्ञा आज भी वैसी ही है, न अर्जुन का स्थान कम्प्यूटर ने लिया है न कृष्ण का स्थान रोबोट ने लिया है। आइन्स्टीन ने न्यूटन का स्थान ले लिया और न्यूटन के अनेक सिद्धान्त बदलने पड़ गये किन्तु दैनिक समाचारपत्र ने वेद का स्थान नहीं ले लिया है चाहे वेद कितना ही पुराना और समाचारपत्र कितना ही नया क्यों न हो। समाचार पत्र परिस्थिति का विश्लेषण करता है इसलिये प्रासङ्गिक है किन्तु परिस्थिति बदल जायेगी तो वह अप्रासङ्गिक होकर रद्दी वाले को तोलकर बेच दिया जायेगा वेद में मनुष्य की मनस्थिति का विश्लेषण है जो बदलती नहीं अतः वेद को रद्दी वाले को बेचने की बात सोचने में भी नहीं आती।

वेदः एक विज्ञान

हमने वेद का उदाहरण दिया किन्तु वेद भी मनोविज्ञान की तरह विज्ञान है और वेद में सब विज्ञानों की अपेक्षा मन का विज्ञान ही सर्वाधिक है–

यस्मिनृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठितारथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।

किन्तु वेद के साथ वही कठिनायी है जो सब विज्ञानों के साथ है– उसको समझने के लिये तपस्या चाहिये। वह कोमलमति स्त्री, सामान्यजन, अथवा कोरे बुद्धिजीवियों की भी समझ से परे रह जाता है– **स्त्रीशूद्रद्विज बन्धूना त्रयी न श्रुतिगोचरा।** जिन क्षुद्र बुद्धिजीवियों ने वेद को हाथ लगाने की अनधिकार चेष्टा की तो उन्हें वेद में यह महान् सत्य (?) हाथ लगा कि आर्य लोग गोमांस खाते थे– मघासु गावो हन्यन्ते। उन्हें यह समझ में नहीं आया कि माघ मास की ठिठुराती सर्दी में गो अर्थात् सूर्य की किरणें **हन्यन्ते = क्षीण** हो जाती हैं। न उन्हें यह आदेश समझ में आया कि गौ नामक पशु अदिति अर्थात् देवों की माता है, उसके दूध में दिव्यगुण हैं, वह निर्दोष है, उसे मारना नहीं है – **मा गामनागामदितिं वधिष्ठ।** वेद के अनधिकारी के हाथों जाने का यह परिणाम वेदों के व्यास अर्थात् विस्तार करने वाले वेदव्यास से अधिक और किसे पता होगा?

मानव का जयघोष

तब वेद व्यास ने अपने से निकटतम एक राजवंश भारतवंश की कथा लिखी जिसे हम आप सब समझ सकें और जो उसी कार्य को साहित्यिक शैली में पूराकर दे जिसे वेद अपनी वैज्ञानिक शैली में कर रहे थे। तो फिर महाभारत पाँचवाँ वेद बन गया–भारतं पञ्चमो वेदाः। मनोविज्ञान हो, वेद हो, महाभारत हो उद्देश्य सबका एक ही है–अपने को जानो–**आत्मानं विद्धि**। अब मनोविज्ञान और वेद की पद्धति के उपर्युक्त विवेचन के आलोक में जब हम महाभारत को तुलनात्मक दृष्टि से देखते हैं तो सहज ही एक मंगलाचरण फूट पड़ता है–

नारायणं नमस्कृत्य, नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं वाचं, ततो जयमुदीरयेत्।।

महाभारत जय नामक इतिहास – **जय नामेतिहासोऽयम्।** महाभारत में किसकी जय हुई? पाण्डवों की? यह उत्तर बहुत स्थूल है। महाभारत में मानव की जय हुई – न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्। देव मनुष्य बन कर अमर हो गये

वेदों में देवों की जय है—वे अपौरुषेय हैं। महाभारत में आठ वसुओं में एक वसु भी आते हैं तो उन्हें भीष्म पितामह बन कर आना पड़ता है। यह देवों पर मानव की विजय है कि जो वसु देव रूप में किसी को ज्ञात नहीं थे वे ही मनुष्य रूप में भीष्म बनकर कौरव–पाण्ड़वों के ही नहीं हम सबके इतने सुपरिचित "पितामह" बन गये कि भीष्म का नाम लिये बिना भी केवल पितामह कहने पर भीष्म का ही बोध होता है, किसी और दादा परदादा का नहीं।

अब कुन्तीपुत्रों को लें। पाँचों पाण्डवों और उनके साथ कौन्तेय कर्ण क्या हैं? देवों के मानवरूप – **आत्मा वै जायते पुत्रः।** वेदों के सूर्य सूतपुत्र कर्ण बन गये जिनका उद्‌घोष सुनें–

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।।

पौरुष का ऐसा अभिनन्दन सूर्यपुत्र के अलावा और कौन कर सकता है– **पश्य सूर्यस्य महिमानं यो न तन्द्रयते चरन्।** यही तो सूर्य की महिमा है जिसे ब्राह्मण ग्रन्थ गा रहे हैं।

अर्जुन इन्द्र देव के पुत्र हैं। ये वही इन्द्र देव हैं जिनका मानमर्दन श्री कृष्ण ने गोवर्धनपूजा द्वारा किया/करवाया था। उसी इन्द्रदेव ने जब एक मानव–पुत्र धरती को दिया तो उसी मानव–पुत्र अर्जुन के वही श्री कृष्ण सारथी यानी आज की भाषा में ड्राइवर बनने को तैयार हो गये। पर सारथी भी कैसे?गीतामृत पिलाने वाले। कर्म की महिमा के उद्‌गाता। मानव और मानव के पुरुषार्थ का जयघोष वाला यह जय नामक इतिहास – **जय नामेतिहासोऽयम्** – महाभारत है जिसके आधार पर हम कह सकते हैं–मेरा भारत महान् है।

वानर, नर और नारायण की त्रयी

हनुमान् जी ठहरे वानर। अर्जुन के रथ की ध्वजा पर चढ़कर बैठ गये। नर अर्जुन रथ के मध्य में रथी है एक वानर उनके रथ की ध्वजा पर बैठा है और नारायण रथ के घोड़ों की लगाम थामे हैं। नर, वानर और नारायण की त्रयी का क्या विचित्र चित्र महाभारत दे रही है? और उस चित्र को "सेल्फी" द्वारा महर्षि वेदव्यास प्रस्तुत कर रहे हैं। यह महाभारत की कथा की एक झलक है। यह कथा जयपुर के राजगुरु कथाभट्टों ने ही १७० साल तक नहीं कही, ५००० साल से कही जा रही है और क्या आप मानते हैं कि यावच्चंद्र दिवाकरौ यह कथा लुप्त हो सकती है? कदापि नहीं।

मनमानी का परिणाम

महाभारत मनुष्य के मन का विश्लेषण है, लेकिन ईमानदारी से किया गया विश्लेषण। क्या यह कटु सत्य नहीं कि हमारा मन ठीक और गलत के बीच जब झूलता है तो ८०–९० प्रतिशत गलत का पक्ष जीत जाता है। इसी सत्य को उजागर करने के लिये महाभारत की कथा इतनी लोकप्रिय हो गयी कि इसे टी. वी. पर दस बार भी दिखाया जाये तो भी इसे दसों बार देखने वाले मिल जायेंगे। यह हमारे आपके मन की बात जो हुई।

पर 'मन की बात' से ही काम चल जाता है क्या? चल जाता तो महाभारत ही क्यों होता? सब ही तो अपनी मनमानी कर रहे थे। मनमानी का उदाहरण है–राजसभा में द्रौपदी के निर्वस्त्र किये जाने का प्रसङ्ग। युधिष्ठिर की मनमानी देखिये भाईयों को दाव पर लगाया सो लगाया, द्रौपदी को दाव पर लगा दिया? उधर दुर्योधन की मनमानी देखिये वह जड़मति यह न समझ पाया कि अर्जुन और भीम जैसे वीरों की पत्नी को नंगा करने पर उसका क्या परिणाम होगा। और द्रौपदी के व्यवस्था सम्बन्धी प्रश्न करने पर भीष्म पितामह की मनमानी तो हद हर्जे की है कि कहा कि 'धर्म सूक्ष्म है' इसलिये वे कुछ नहीं कह सकते। यदि भीष्म पितामह की 'धर्म की सूक्ष्मता' को प्रमाण मान लें तो फिर न्यायालयों का हर चीज पर एक ही निर्णय होगा कि 'धर्म सूक्ष्म हैं' अतः कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता। सो इस सारी मनमानी के बदले जो घमासान युद्ध हुआ उसमें पराजित भी रोये और विजयी भी रोये। संसार का यही स्वरूप है। मन के कहने पर पराजय तो पराजय है ही, विजय भी पराजय है–सर्वं दुःखं विवेकिनः। तो सन्देश क्या है–मन की मत मानो। तो फिर किसकी मानें?

प्रश्न बहुत महत्त्व का है। शरीर की मानें तो शरीर व्याधियों का मन्दिर है–**शरीरं व्याधिमन्दिरम्।** तमोगुण का साक्षात् मूर्तिमान स्वरूप है शरीर। मन की मानें तो मन रजोगुण के कारण –पीपलपात सरिस मन डोला। मन पीतल के पत्ते की तरह चंचल है। सत्त्वगुणात्मक बुद्धि की मानें तो बुद्धि अहंकार की पुत्री है फिर किसकी मानें? मानें त्रिगुणातीत आत्मा की। आत्मा की आवाज सुनें। पर आत्मा में आवाज है ही नहीं–उपशान्तोऽयमात्मा। तो शान्त हो जायें यह शान्तानन्द है। निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

किन्तु महाभारत का लक्ष्य केवल शान्तानन्द नहीं है। गीता की फल श्रुति 'श्रीर्विजयो भूतिः' वाला समृद्धानन्द भी है। अतः महाभारत का हृदय महाभारत के मध्य भीष्मपर्व में श्रीकृष्णार्जुन सत्तिवाद है। इस सम्वाद का हृदय 'करते हुए भी न करना' है –कुर्वन्नपि न करोति सः। यह निःश्रेयस है। जिससे अभ्युदय तथानिः श्रेयस दोनों की प्राप्ति हो वह धर्म है –**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**

उपसंहार में उस ओर ध्यान दें जिसकी चर्चा हमने उपक्रम में की थी कि महाभारत चारों पुरुषार्थों का विश्वकोश है। धर्म और मोक्ष का सङ्केत ऊपर हुआ। गीता वाले अध्यायों में इसका विस्तार है। किन्तु अर्थ और काम की बात करें तो यह स्पष्ट होता है कि सारा संघर्ष –ज़र, ज़मीन और ज़ोरु अथवा कंचन, कामिनी और कादम्बरी का है। महाभारत इसी संघर्ष का आख्यान है। संघर्ष का जो निष्कर्ष है उसे वेदव्यास ने दोनों भुजाएँ उठाकर घोषित किया– धर्म से अर्थ और काम की सिद्धि होती है। किन्तु महर्षि वेदव्यास की इस निष्पत्ति को न महाभारत के समय किसी ने सुना था, न अब भी कोई सुन रहा है–

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्चकामश्च स धर्मः किन्न सेव्यते?

धर्म से च्युत होकर दुर्योधन का पक्ष मारा गया और युधिष्ठिर के हाथ द्रौपदी के पाँच पुत्र खोकर जो विजय आयी वह राख बुरकी हुई खीर के समान अभोग्य ही बनी रही। श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर को भीष्म से जो अनुशासनपर्व और शान्तिपर्व के उपदेश सुनवाये वे आज भी अरण्यरोदन ही सिद्ध हो रहे हैं। उन्हें आज हम सुनते तो क्या अत्याचार, भ्रष्टाचार और बलात्कार का साम्राज्य देखनें में आता ?

पर कृष्ण ने जिस धर्म की स्थापना के लिये अवतार लिया था उस धर्म की स्थापना हुई क्या?– यादवों की उद्दण्डता ने उनके वंश का नाश कर दिया। धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, विदुर ने अपने को इच्छामृत्यु के हाथों समर्पित कर दिया। पाण्डव हिमालय में अनाथों की भाँति एक एक करके गिरते चले गये। उसके बाद जनमेजय का अर्धसफल नागयज्ञ और कलियुग का प्रवेश। **क्या मनुष्य जाति की यही नियति है?**

इस प्रश्न का उत्तर दिया श्री अरविन्द ने कि जब तक हम अल्पज्ञ मन के धरातल पर हैं तब तक निस्तार नहीं होगा। मन से ऊपर उठना होगा और अतिमन तक जाना होगा। जब तक ऐसा न हो तब तक महाभारत की कथा को बार बार कहना–सुनना चाहिये क्यों कि वह हमारी वर्तमान स्थिति को जिस प्रभावी ढंग से समझाती है, वह अनुपम है। किसी अन्य ग्रन्थ ने शायद ही मनुष्य की लाचारी को इतने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया हो जितने मार्मिक ढंग से भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और शल्य ने तब कहा जब युधिष्ठिर उनके पास युद्ध से पूर्व आशीर्वाद लेने गये–

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थ न कस्यचित्
इति सत्यं महाराजबद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः।
अतस्त्वां क्लीबवत् वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन
भृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्यैः युद्धादन्यत् किमिच्छसि।।

क्या ये शब्द उस स्थिति का ही चित्रण नहीं करते जब हम पैसे के पीछे सही को जानते हुए भी नहीं अपना सकते और गलत को जानते हुए भी अपना लेते हैं?–**जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।** हन्त! मनुष्य की विवशता!! मजेदार बात यह है कि इस विवशता के बीच भी मनुष्य महान् है। भीष्म ने अपने को क्लीबवत् कहकर धिक्कारा किन्तु श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को उन्हीं से ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप अनुशासनपर्व और शान्तिपर्व का जन्म हुआ। अर्थात् भीष्म युद्ध के समय क्लीबवत् होते हुए भी आजन्म बह्मचर्य का भीष्मव्रत पालन करने के कारण पितामह ही नहीं धर्म और राजनीति के अपने युग के विश्वकोष भी बन गये।

इसी प्रकार की धूपछाँया के बीच महाभारत की कथा चलती है और महानदी में अनेक नदियों के समान उसकी मुख्य कथा में नल–दमयन्ती जैसी उपकथायें जुड़ती चली जाती हैं। शकुन्तला–दुष्यन्त की कथा तो कालिदास के अमर नाटक का आधार बन गयी। और भी न जाने महाभारत की महाकथा में से कितनी कथायें , महासमर जैसे उपन्यास, वेणीसंहार जैसे नाटक और शिशुपाल जैसे महाकाव्य निकले हैं और निकलते रहेंगे। वस्तुतः रामायण इस देश की गंगोत्री है तो महाभारत इस देश की यमुनोत्री है। यदि ये दो कथायें न हों तो यह देश मरुस्थल बन जाये। राजगुरु कथाभट्टों की जिस परम्परा ने महाभारत की महाकथा को वर्षों तक मौखिक कथावाचन की परम्परा से प्रवाहित किया उनके वंशजों का अपने पूर्वजों को याद करने का उपक्रम सर्वथा अभिनन्दनीय है।

महाभारत के कृष्ण

–राजगुरु कथाभट्ट जगदीश चन्द्र शर्मा

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।

परम पूज्य, पुरुषोत्तम, भगवान्, आनन्दकन्द, बृजचन्द्र के गुणानुवाद करते हुए हृदय में जिस प्रकार का आनन्द सन्दोह उद्वेलित होता है और जो आप्यायन जीव को प्राप्त होता है वह भक्त सहृदय ही संवेद्य है। भगवान की लीलाओं का पारावार नहीं, आप मत्स्य, अश्व, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, हयग्रीव, श्री रामचन्द्र आदि अनेक अवतारों के व्याज से भक्तों को यही निदर्शन कराते हैं कि वह सर्वव्यापी, सर्वभूतान्तरात्मा, सर्वसाक्षी, माता–पिता, भर्ता व सहायक मित्र हैं और भक्त के आपद्–ग्रस्त होने पर उसके आर्तत्राण परायण है। **"स्मरणं कीर्तनं"** आदि से भक्ति की जो नवधा उपासना का विभाग है उसमें **"सख्यम्"** भी एक है। क्या भगवान से कोई बराबरी कर सकता है? इस प्रश्न का उत्तर केवल– मात्र उनकी कृपा पर ही निर्भर है।

यहाँ पर सख्य–भाव की भक्ति का एक चित्र नर और नारायण के प्रसंग में उपस्थित करना अभीष्ट है। नारायण, सब जगत् की प्रतिष्ठा हैं और नर, उसी नारायणांश को भजने वाला क्षुद्रजीव। यद्यपि उसमें भी प्रमुखता का बीज आधान करने वाले नारायण ही हैं किन्तु नर को, जो अन्य सामान्य से, उत्तम बताया गया यह भी उसकी विशेषता प्रभुकृपा के बल पर ही है। जैसे बाललीला प्रसंग श्रीमद्भागवत् में, गोकुल में प्रेम सखाओं सुदामा, बलराम, मनसुखा आदि के साथ आपने बाललीला की और साथिन गोपियों के साथ, शरद् जुन्हाई में रासलीला की, वह सब इसी रस सन्दोह को अभिव्यक्त करता है जो श्रोता व उपासक के मन में परमानन्द का जनक है। नारायण के साथ रहने वाला नर वास्तव में नरोत्तम अर्जुन ही है जो पांच पाण्डवों में से एक है और जो शाश्वत् भक्त है, बदरिकाश्रम में अद्यावधि सेवा में रत है।

आज, भगवान के शौर्य और औदार्य का वर्णन, लेखक के मन को, उसी की प्रेरणा से, इस ओर उन्मुख कर रहा है। इस प्रसंग का उद्भव, यदि देखा जाय तो कारागृह में भगवान् के अवतार लेने के साथ ही प्रारंभ होता है और सूतिकागृह में "शंख, चक्र, गदा, पद्म" धारण करने वाली नारायण की मूर्ति, स्वजन्मावतार का समस्त भेद खोल देती है और संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति अवनत होती है आपके इशारे पर। इसी प्रसंग में कंस के प्रभाव का विनाश, कारागृह के कपाट आदि के खुल जाने, प्रहरियों की मोहावृत्ति, यमुना का घोर वर्षा काल में मार्ग प्रदान, पूतना, प्रलम्ब, बक, चाणूर, कुवलयापीड, कंस वध आदि निदर्शन हैं। जो श्रीमद्भागवत् में श्री वेदव्यास जी ने भगवान शुक–मुख से उच्चरित कराया है।

महाभारत का कथा प्रसंग कृष्णद्वैपायन श्री वेदव्यास जी महाराज ने उक्त **"नारायणं नमस्कृत्य"** के मंगलाचरण से नमस्कार के साथ **"देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्"** से किया है। आसुरीसंपद् का विनाश व दैवीसंपद् का उत्कर्ष, इहलोक व परलोक में कल्याणकारी है और इस सारे वैभव का ज्ञान, शब्द श्रवण से प्रारम्भ होने के कारण वाग्देवी की विभूति श्रीसरस्वतीजी मानी जाकर उसे भी नमस्कार किया गया है। **"जयो नामेतिहासोऽयम्"** से महाभारत ग्रंथ का नाम भी जय है और **"उदीरयेत्"** से वस्तुनिर्देशात्मकता भी उक्त मंगलाचरण में समाविष्ट है। यहाँ **"व्यासम्"** प्रायः मंगलाचरण पद में समाविष्ट है वह कथाप्रसंग के आधार पर, भगवान् वेदव्यास के शिष्य इसे सुना रहे हैं अतः उन्होंने **"चैव"** के स्थान पर **"व्यास"** अपने गुरु को नमस्कार किया है।

"लोमहर्षकपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य– कुलपते द्वादशवार्षिके सत्रे– सुखासीनानभ्यगच्छत्" से प्रसंग प्रारंभ होता है। नैमिषारण्य–क्षेत्र में कुलपति– शौनक के बारह वर्षों तक चलने वाले सत्र में, लोमहर्षण– पुत्र उग्रश्रवा सौति का वहाँ आना और यज्ञोत्तर काल में शौनकादि द्वारा पूछे प्रसंग से महाभारत कथा का प्रवचन प्रारंभ होता है।

कहते हैं श्री वेदव्यास जी ने जब उक्त काव्य की निर्मिति का परिचय श्री ब्रह्मा जी से कराया तो आशीर्वाद देते हुए ब्रह्माजी ने कहाः–

"जन्मप्रभृति सत्यां ते वेद्मि गां बह्मवादिनीम्।
त्वया च काव्यमित्युक्तं तस्मात् काव्यं भविष्यति।।
अस्य काव्यस्य कवयो न समर्था विशेषणे।
विशेषणगृहस्थस्य शेषास्त्रय इवाश्रमाः।।
काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने।"

मैं जानता हूँ कि ब्रह्मवर्णनात्मिका आपकी वाणी, सदा से सत्य–निष्ठा रखने वाली है और आपने जो इसे काव्य (कवि–कर्म) कहा इसलिए सब कुछ (इतिहास दर्शन वेदांतादि) इसमें समाविष्ट होने पर भी अब यह काव्य के नाम से ही प्रसिद्ध होगा और चार आश्रमों में (ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ व सन्यास) जैसे गृहस्थाश्रम ही प्रमुख है उसी प्रकार महाभारत काव्य अन्यों से सर्वोत्तम रहेगा। मुनिवर इस काव्य का लेखन कराने के लिए तुम श्री गणेश जी का स्मरण करो।

श्री ब्रह्माजी के अन्तर्धान होने पर **"ततः साभार हेरम्बं व्यासः सत्यवती सुतः,"** श्री सत्यवती सुत वेदव्यास जी ने हेरम्ब (श्री गणेश जी) का स्मरण किया। श्री गणेश जी आविर्भूत हुए और **"लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक। मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च।"** हे श्री गणेश आप इस काव्य भारत के लेखक बनो और मेरे से उच्चरित, कहे गए का, व मेरे मन में कल्पित का भी आपको लेखन करना है।

श्री गणेश जी उत्तर देते हैंः–

"श्रुत्वैतत् प्राह विघ्नेशो यदि मे लेखिनी क्षणम्।
लिखतो नावतिष्ठेत् तदा स्यां लेखको ह्यहम्।।"

इस बात को सुनकर श्री विघ्नेश ने कहा– मेरी लेखनी चालू होने पर रुकेगी नहीं, इस पर दृढता बरती जाय तो मुझे लेखक बनना स्वीकृत है।

आपस में सहमति होने पर कहते हैं श्री व्यासदेव ने ग्रंथ में अनेक ग्रंथियाँ डालने के लिए कुछ कूट श्लोकों की रचना भी की जिसके सम्बन्ध में उग्रश्रवा सौति ने उद्धरण दिया है। महाभारत में उपाख्यान–भाग को छोडकर चौबीस हजार **"चतुर्विंशति साहस्त्री चक्रे भारतसंहिताम्"** श्लोकों में भारत–संहिता का निर्माण किया और पुनः **"अनुक्रमणिकाध्याय"** नाम से 150 श्लोकों में महाभारत को संक्षिप्त किया। फिर से साठ लाख श्लोकों की दूसरी संहिता बनाई जिसमें से 30 लाख श्लोक देवलोक में, पन्द्रह लाख पितृलोक में, चौदह लाख गन्धर्व लोक में और एक लाख श्लोकों की महाभारत मनुष्य लोक में प्रचलित हुई। यह आद्य भारत कहलाया।

इसमें कुरुवंश का विस्तार, गान्धारी की धर्मशीलता, विदुर की उत्तम प्रज्ञा, कुन्ती देवी का धैर्य, वासुदेव श्री कृष्ण का माहात्म्य, पांडवों की सत्यपरायणता, धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन आदि का कपटपूर्ण व्यवहार, पुण्यकर्मा मानवों के चरित्र आदि इन एक लाख श्लोकों वाले महाभारत ग्रंथ में वर्णित हैं। नमूने के दो पद्य सभी असलियत व रूपरेखा के परिचय के निमित्त यहाँ उद्धृत कर देने से ग्रंथ संबन्धी विशेष महत्त्व प्रकाशित होगाः–

"दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः,
स्कन्धः कर्णः शकुनि तस्य शाखाः।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे,
मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी।।"

दुर्योधन (पात्र) क्रोधमय महावृक्ष के जैसा है, इस वृक्ष के कर्ण (पात्र) स्कन्ध हैं, शकुनि शाखा और दुःशासन समृद्धिपूर्ण फल–पुष्प हैं। अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ही इसकी मूल जड़ है। यह कारण रूप से उपस्थित किया गया वह पद्य है जिससे महाभारत युद्ध होने के मूल कारण का संक्षेप में स्वयं वेदव्यास जी ने चित्र खींचा है। यह तस्वीर की काली धुँधली छाया उपस्थित कर रहा है। क्योंकि यह मन्यु (क्रोध) मय महावृक्ष है। अब देखिये न्यायपूर्ण चित्र का स्वच्छ स्वरूपः–

"युधिष्ठिरो धर्मभयो महाद्रुमः,
स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे,
मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणश्च।"

राजा युधिष्ठिर, न्यायपरायण, धर्म प्रतिपालक–स्वरूप एक विशाल वृक्ष है, अर्जुन स्कन्ध (डाला) और भीमसेन इसकी शाखा हैं। माद्री पुत्र दोनों (नकुल व सहदेव) इसके पुष्प और फल स्वरूप हैं। भगवान श्रीकृष्ण इस वृक्ष की मूल (जड़) हैं और ब्रह्म का स्वरूप और ब्राह्मण भी आधारभूत हैं। यह जगती का अभीष्ट वृक्ष, अन्याय अधर्म का निराकरण करने वाला है। यह उज्ज्वल पक्ष है और चित्र का स्पष्ट (स्वच्छ) स्वरूप।

इस सत्य व न्याय प्रतिष्ठि के मूल रूप, ब्रह्म स्वरुप भगवान श्रीकृष्ण का राजनैतिक या सामाजिक रूप उपस्थित करना लेखक का परम लक्ष्य है और इससे पहिले भूमिका रूप में ग्रंथ का गौरव व लक्ष्य यहाँ उपस्थित किया गया है। आशा है पाठकगण इस उद्धरण से इतना अनुसंधान लगा सकेंगे कि महाभारत–महाकाव्य कैसा है, किसका बनाया हुआ है, और भगवान श्रीकृष्ण ही इस धर्मवृक्ष के मूल स्तम्भ हैं। कहावत है **"मूलं नास्ति कुतः शाखा",** जहाँ वृक्ष की जड़ का प्रथम वर्णन नहीं

और उसकी केवल मात्र शाखाओं का निदर्शन हो तो वह व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार **"शाखाचङ्क्रमण"** नाम से भी उस लेख या पुस्तक का बहिष्कार किया जाता है जिसका कि आधार ही न हो। बहुत कठिन है इस प्रकार का विवेचन, या मूल रूप उपस्थित करना तथापि **"स्थालीपुलाक–न्याय"** से सीझने को रखे गए चावलों में से एक कण के परिपक्व हो जाने की परीक्षा करने पर समस्त चावलों के पूरे पक जाने का निर्णय ले लिया जाता है, ठीक इसी प्रकार अधर्म व धर्म के निर्णय करने के अवसर पर भी एक चरित्र की हीनता से अपर चरित्र की उत्कृष्टता बताना– पापमय व धर्ममय वृक्ष का वर्णन उपस्थित करने से है।

भगवान श्रीकृष्ण के महाभारत चरित्र से यदि उनकी मूर्ति का श्रृंगार करूँ, उनके गुणानुवाद वर्णन करूँ तो अवश्य मुझे प्रेम–सरोवर से राजनीति के क्षेत्र, युद्ध–क्षेत्र में (कुरूक्षेत्र) आना पडता है। राज करने वाले की नीति अत्यन्त गूढ, स्वार्थ साधन परक और दूसरे को धोखा देना व निजी वर्चस्व कायम करने की होती है। नेता वही जगत् में माना जाता है जिसकी बात पर, लोग, विश्वास कर सकें। नेता को अपना दल भी बनाना पडता है और दल के सभी कार्यकर्त्ता जो उसकी आज्ञा मानना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, वे सब उसके अपने अंग हैं और अंग व अंगी का भाव परस्पर विरोधी नहीं हो सकता। आज और कल में कितना अन्तर है और महाभारत काल से आज के वर्तमान को, कल से कितना जुदा किया जा सकता है। संक्षेप में निवेदन करने दीजिए कि लेखक इस बात को कम ही स्वीकार करता है कि कल कल था और आज आज है किन्तु कल की अनुभूति आज भी हृदय में तभी रणरणिका उत्पन्न कर सकती है जबकि उदाहरण व दृष्टान्त को आप आज की ही परिस्थितियों में समझें।

बहुत से लोग भावावेश में इस काल की स्मृति करते हैं किन्तु यह याद रखिए कि आज का महत्त्व आज का ही है। जिन 5000 वर्षों पहिले बीती हुई घटना के सूत्रधार का वर्णन करूँ तो सत्य व नीति का एक सन्मार्ग, ऐसे कंकड़ों के बल पर बनाना पडता है जो आज के तोड़े हुए हैं। आज, भारतवर्ष **"पर"** के अधिकार में न होकर स्वतन्त्र है और आज यहाँ के बाशिन्दे कौरव–दल व पांडव–दल में बटे हुए हैं। पहिले की तरह आज भी संघर्ष है और सत्तारूढ़–दल असत्तारूढ़ दल की सत्य परिस्थितियों पर विश्वास में आनाकानी करता है। सर्वशक्ति को धारण करने वाला पांडव–पक्ष का संचालक **"कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः"**, नेता का नितान्त सा अभाव है इतनी सी आज और कल की विषमता है। अन्न, अन्नादों को मिलना आज संवत् 2031 (सन् 1957) में दुर्लभ है, इसमें कुछ तो प्रकृति का प्रकोप है और कुछ मनमानी है।

ऐसे भीषण समय में, आपस में वैरभाव रखकर, परस्पर भारत के दलों में, भारतवर्ष की भूमि पर, भिडन्त होकर पुनः कुरुक्षेत्र बने ऐसी विचारधारा रखना भारतीयों को लक्ष्यच्युत कर देगा और देश के पराए शत्रुओं से जूझ सकने में कमजोरी आएगी। पड़ौसी देश जो हमारे देश पर ताक लगाए बैठे हैं, अवसर देख रहे हैं कि कब हम कमजोर बनें और वह चढ़ दबाए।

भारतीयों, श्रीकृष्ण के उपासक होकर, हमको वह नीति अपनानी है जिससे न्याय की भीख मांगने वाले को अन्याय न मिले, यदि लगातार अवहेलना सत्य, न्याय या मनुष्य की, की गई तो परिणाम उत्तरदायी लोगों को भोगना ही पड़ेगा। शिक्षा का स्तर, शासन के तन्त्र का विभाग, कानून व अध्यादेश सब को समझकर, सबके भलाई में निहत करना आवश्यक था, जबकि पद्धति प्रारंभ से आज तक यह न जान पाई कौन क्या काम उत्तरदायित्व रीति से करता है और उस किए काम का फल मीठा है या कडुआ। जिस शिक्षा क्षेत्र से निकलने वाले विद्यार्थी, तपस्वी, त्यागी और पराई पीर को परखने वाले नहीं हैं, जिस शासनकर्त्ता के बर्ताव से आज भी अंग्रेज़ों जैसी पराई बू आती हो, क्या वह शासन तन्त्र उत्तरदायित्व वहन करने का अधिकारी है ?

श्रीकृष्ण, पांडवों के सखा व सम्बन्धी थे और अग्रिम युग के निदेशकर्त्ता थे। जहाँ ब्राह्मणों व क्षत्रियों का परस्पर सहयोग उस महाभारत काल में था वैसा दिग्दर्शन वैश्यों और शूद्रों से व्यवहार में नहीं मिलता।

मान्यता विद्वान् व शूरवीर की सभी तरह होती है फिर उसे कतई आवश्यक नहीं कि वह किसी देश का मूर्धाभिषक्त राजा ही हो जैसे मथुरा व द्वारिकापुरी के नैतिक स्वामी श्रीकृष्ण ही थे किन्तु कहीं पर भी आपने खुद को राजा नहीं बनाया, राजा लोग दूसरे ही थे। साथ ही यह भी प्रभावोत्पादक बात है कि जिन राजमुकुटों ने अन्याय से सर उठाया वो तहस–नहस, सत्य–आग्रही नेता श्रीकृष्ण से किये गये। यह महाभारत ग्रंथ में स्पष्ट है। महाभारत के मूल में पांडवों के नेता यदि कृष्ण न होते तो कौरवों के राजा धृतराष्ट्र व उसके दुष्ट पुत्र दुर्योधन का राज्य कभी भी समाप्त नहीं होता। परस्पर के कलह व युद्ध से देश का वैभव व गौरव नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार दोनों दलों का भविष्य अन्तराल

के गर्भ में लीन हो गया उसी प्रकार सोलह हजार आठ पटरानियों से विवाह कर प्रत्येक में 10, 10 संतानों को उत्पन्न करने वाले महावीर कृष्ण, अपने परिवार को संसार में असंयम करने नहीं छोड गए। सन्नेता, अपने परिवार को भी उसी कोटि में रखता है, जैसे कि दूसरे दुष्ट परिवारों को स्वयं दण्ड दे। आज भी यदि दलों के भेदभाव को सत्य के आधार पर मिटाने के लिए, अपने स्वजनों का भी निराकरण अभीष्ट हो तो सन्नेता को करना चाहिए साथ ही कमजोर और मदद की आशा करने वाले को सहायता दी जानी चाहिए, न कि पुछल्लों को।

वीर का तानाबाना राजनीति से गुँथा होता है। नवरसों में श्रृंगार के समान ही "वीर–रस" की ख्याति है और वीर रस का उपजीव्य "ओज" व "उत्साह" गुण हैं।

चाँपावत जी के मंदिर की स्थापत्य कला

–श्रीमती कल्पना पण्डित
Professor of Architecture, MNIT, Jaipur

–श्री पुष्पक पण्डित
वरिष्ठ वास्तुविद्

'मंदिर श्री चाँपावत जी' की स्थापना वि.सं. 1824 तदनुसार सन् में मांजी साहब चांपावत जी, धर्मपत्नि महाराज सवाई जगत सिंह जी ने करवाया और पैरोहित्य पं. हरगोविंदजी छोटीलालजी को सौंपा। जौहरी बाजार में स्थित यह मंदिर पूर्वाभिमुख है। इसमें आगे की दुकानें मंदिर निर्माण के पहले से व्यापारियों के पास थी।

वैष्णव संप्रदाय के मंदिर (मध्यकालीन) हवेली शैली में पाये जाते हैं क्योंकि इसमें ईश्वर के जागर्तिक स्वरूप (मानव स्वरूप) की पूजा होती है अतः इसमें पुरोहित परिवार को सेवा पूजा के लिये रहने की व्यवस्था होती है। इस तरह ये मंदिर अन्य नागर अथवा द्रविड शैली से भिन्न होते हैं। हवेली शैली के मंदिर सामान्य तौर पर दो अथवा तीन चौक के होते हैं। पहला चौक सांसरिक कार्य के लिये होता है जहाँ पर समाज के लोग आ सकते हैं।

दूसराचौक खुलेनट मंदिर की तरह माना जाता है जहाँ ईश्वर की आराधना गीत, संगीत, प्रवचन व आख्यान के द्वारा की जाती है।

तीसरा चौक घर के निवासियों के दैनन्दिन आवश्यकताओं के उपयोग के लिये नियत है।

गर्भग्रह के उपरशिखर न हो कर, छतरियां स्थापित की जाती है।

देखें चित्र/फोटो क्रमांक – 1A

चित्र 1A

इसी के अनुसार मंदिर श्री चाँपावत जी मे भी तीन चौको की श्रृंखला के द्वितीय चौक में श्री चंद्रबिहारी जी का विग्रह आंगन की जगह से लगभग छरूफुट की ऊँचाई पर स्थापित किया गया है। और इस "शाला" को चित्रों और अलंकरणो से सुव्यस्थित किया गया है। देखें चित्र/फोटो क्रमांक– 2

चित्र 2

बीच का चौक जो एक प्रकार से खुले नटमंदिर के रूप में भी काम आता है, दोनों अक्षों में सममित है। द्विआक्षीय सममितता परंपरागत (symmetrical) राजस्थानी वास्तुकला की शैलीगत विशेषता है। (चित्र संख्या 4) पुरानी सभी ऐसी इमारतें जो पत्थर अथवा ईंट में बनायी जाती हैं उसमें हमेशा विषम संस्था में जगह को बांटा जाता है जिससे केन्द्र हमेशा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। देखें स्केच क्रमांक 3

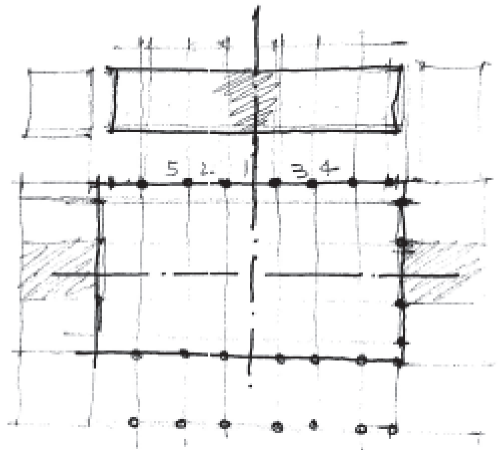

Concept of centrality and odd division

चित्र 3

मंदिर की कुर्सी पर पत्तों की माला का अलंकरण है। इसे पोहची कहा जाता है। यह अलंकरण सभी फर्शो पर उकेरा जाता है व इससे क्षेत्र की किनार अथवा सीमा को रेखांकित किया जाता है। (चित्र संख्या 5)

अराईश का कार्य जयपुर की विशेषता है तथा सभी मंदिरों व घरों में इसका प्रचुरता से उपयोग किया जाता है। फर्श से करीब तीन चार फुट उपर तक इस कार्य को किया जाता है ताकि बैठक के समय सर एक चिकनी सतह पर ही लगे। (चित्र संख्या 6)

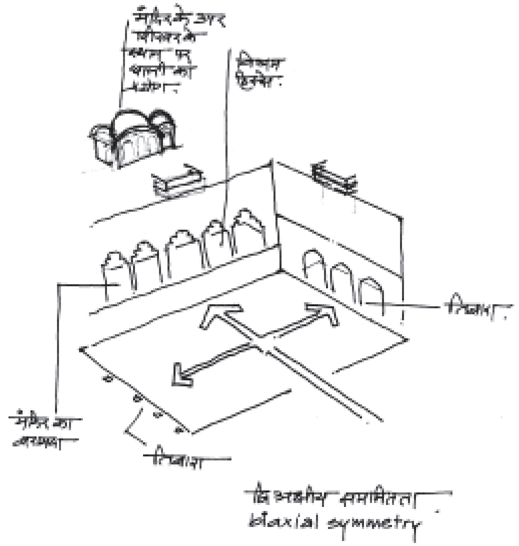

(चित्र संख्या 4)

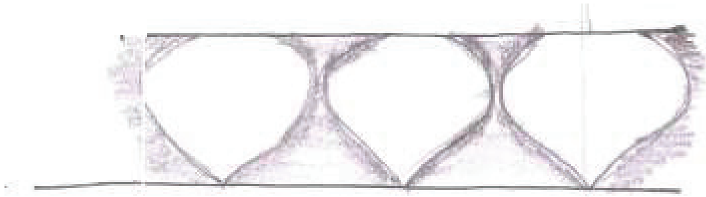

(चित्र संख्या 5)

'पोह ची'

यह अलग अलग फर्श/सतह के स्तर पर उकेरी जाती है अथवा गढ कर लगायी जाती है इससे सीधा बतलाने का एक तरीका है।

(चित्र संख्या 6)

इस मंदिर में नियमानुसार कथा वाचन की परंपरा थी। श्रोताओं को इसमें नीचे फर्श पर (भूर्तव्य में) तथा पहली मंजिल पर बने बारादरी में बैठ कर कथा सुनने की सुविधा थी।

देखें चित्र/फोटोक्रमांक–4

मंदिर श्री चांपावत जी वास्तुशास्त्र में उल्लिखित नवशाला मंदिर का उदाहरण है।

वास्तुशास्त्र सम्मत विभाजन

संदर्भ– Building Jaipur, Vibhuti Sachdev & Giles Tillotson, Oxford University Press 2002

इस मंदिर में शैली वैशिष्ट्य, अर्थात ऊंचा गर्भगृह, मिहराबदार बरामदें, छतरियां, (उच्चस्थापित) दीवारों पर चित्रकारी एवं स्तम्भों पर पच्चीकारी तो है ही परंतु जो विशेषता इसे अन्य हवेली मंदिरों से अलग करती है वह है इसमें गर्भगृह और प्रभुविग्रह की ऊंचाई का वैज्ञानिक तौर पर निर्धारण। देखें चित्र/फोटो क्रमांक– 8

इस वास्तु के प्रत्येक तल से श्री चन्द्रबिहारी जी के संपूर्ण दर्शन प्राप्त होते हैं। ये दर्शन बाहरी व अन्दर के दोनो आलिन्दों से सहज ही प्राप्त होते हैं व मुख्य मार्ग पर जाने वाले आमजन भी इससे लाभान्वित होते हैं। देखें चित्र/फोटो क्रमांक– 9

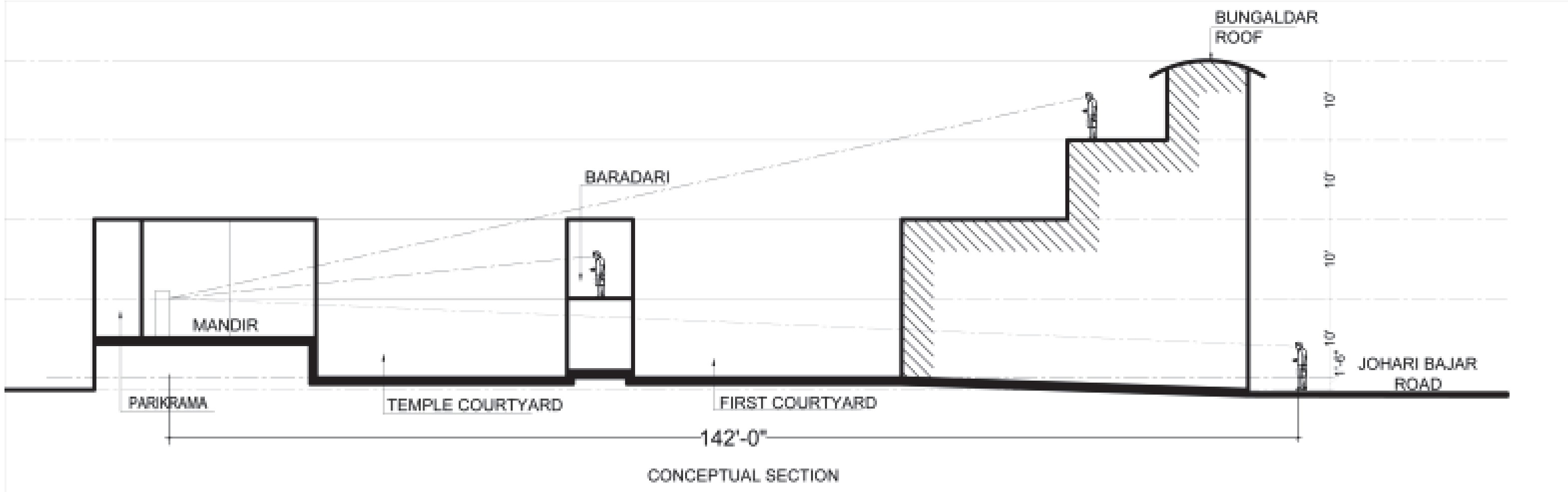

(चित्र संख्या 8)

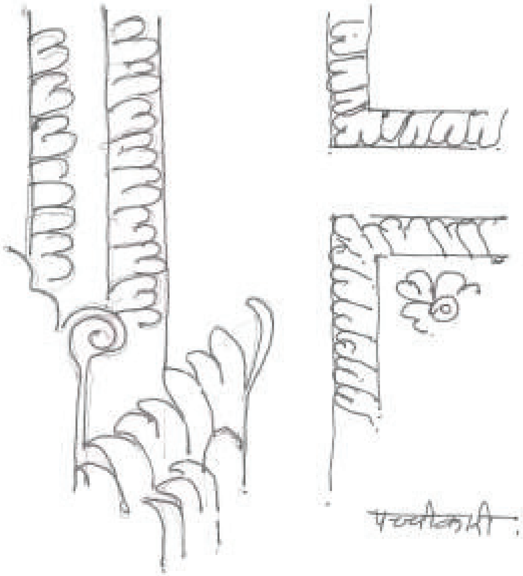

(चित्र संख्या 7)

(चित्र संख्या 9)

जगमोहन

जगमोहन और चौक